# सन्त साधु बनके विचरूँ

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

ॐ

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं

# सन्त साधु बनके विचरूँ

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन साहित्य में
से चयनित मुनिदशा के स्वरूप, महिमा, अन्तर्बाह्य
परिणति से सम्बन्धित 108 वचनामृतों का संकलन


**संकलन, सम्पादन एवं प्रस्तावना :**

**पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन**

बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज.)



: प्रकाशक :

**श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले ( वेस्ट ), मुम्बई-400 056
फोन : ( 022 ) 26130820

**प्रथमावृत्ति** — 2000 प्रतियाँ

**—: प्रकाशन :—**
**श्री ढाई द्वीप जिनायतन पंच कल्याणक**
**प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन अवसर पर**

मूल्य — स्वाध्याय

प्राप्तिस्थान —

**— श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

**— श्री टोडरमल स्मारक भवन**
ए-4, बापूनगर जयपुर - 302015 (राज.)

**— तीर्थधाम मंगलायतन**
आगरा-अलीगढ़ राजमार्ग,
सासनी-204216 (हाथरस), उत्तरप्रदेश

टाईप सेटिंग— **विवेक कम्प्यूटर,** अलीगढ़।
मुद्रक —

# निवेदन

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचनसाहित्य में से चयनित मुनिदशा सम्बन्धी 1008 वचनामृतों के संकलन की शृंखला में प्रस्तुत 108 वचनामृतों का संकलन समस्त तत्त्वप्रेमी साधर्मी बन्धुओं के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त हर्ष एवं गौरव का अनुभव हो रहा है।

यह तो सर्व विदित है कि पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अन्त:स्थल में अध्यात्म की गरिमामय महिमा थी, वहीं उनके भक्तिभीने चित्त में वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति भी उछलता हुआ बहुमान था। यद्यपि पूज्य गुरुदेवश्री ने अपने जीवन में कभी शिथिलाचार एवं शिथिलाचारियों का समर्थन, अनुमोदन, बहुमान नहीं किया; इस कारण जनसामान्य में उनके मुनि विरोधी होने की बात व्यापकरूप से प्रचारित-प्रसारित की जाती रही है और इस तरह के मिथ्या प्रयास आज भी किये जा रहे हैं। किन्तु जब हम पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन एवं प्रवचनसाहित्य का अवलोकन करते हैं तो उनके अन्त:स्थल में व्याप्त वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति भक्ति-ज्वार परिलक्षित होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में पूज्य गुरुदेवश्री के अनेक प्रवचन ग्रन्थों से 108 वचनामृतों का संकलन प्रकाशित करने का प्रयास किया है। विदित हो कि गुरुदेवश्री के शताधिक प्रवचन ग्रन्थों में से ऐसे 1008 वचनामृतों का संकलन प्रकाशनाधीन है। उसके प्रथम प्रयास के रूप में प्रस्तुत ग्रन्थ 'सन्त साधु बनके विचरूँ' प्रस्तुत किया जा रहा है। शीघ्र ही सम्पूर्ण वचनामृत संग्रह प्रस्तुत किया जायेगा।

वर्तमान में व्याप्त सामाजिक वातावरण को लक्ष्यगत करते हुए प्रस्तुत संग्रह आत्मार्थी समाज के समक्ष प्रस्तुत है।

हम भावना भाते हैं कि अति शीघ्र ही यह ग्रन्थ प्रकाशित होकर

जन-जन तक पहुँचे और समाज में सुनियोजितरूप से गुरुदेवश्री के प्रति फैलाये जा रहे भ्रम का प्रक्षालन होने में यह ग्रन्थ निमित्त बने। साथ ही सभी साधर्मी बन्धुओं से भी विनम्र निवेदन है कि आप स्वयं पूज्य गुरुदेवश्री के इन वचनामृतों को पढ़कर इनमें दिये गये सन्दर्भ ग्रन्थों का अध्ययन करेंगे तो निश्चितरूप से आपके भावों में परिवर्तन हुए बिना नहीं रहेगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ में समायोजित वचनामृतों का संकलन एवं भावपूर्ण प्रस्तावना का लेखन पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। तदर्थ हम उनके आभारी हैं।

सभी साधर्मीजन इस ग्रन्थ का अध्ययन कर सच्चे वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति भक्तिभाव से ओतप्रोत होकर निज आत्महित को साधें, इसी भावना के साथ....

ट्रस्टीगण

**श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,**

विलेपार्ला, मुम्बई

# प्रस्तावना

वीतरागमार्ग के साधक / उपासक, ज्ञानी धर्मात्माओं के अन्त:स्थल में वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रति दृढ़ आस्था, समर्पण एवं उछलती हुई भक्ति विद्यमान होती है। प्रत्येक सम्यग्दृष्टि साधक का अन्तरङ्ग, संयम की उत्कृष्ट भावना से ओतप्रोत होता है। अपनी चारित्रिक निर्बलता के कारण संयम धारण न कर पाने पर भी उनके जीवन में संयम एवं संयमियों के प्रति **अहो भाव** विद्यमान रहता है।

जैनदर्शन के अनुसार वीतरागी देव तो पूर्णता को प्राप्त परमात्मा कहलाते हैं, वे कृतकृत्य एवं पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द के भोगी सर्वज्ञ होते हैं। उनकी वाणी एवं उसी परम्परा से कथित वीतरागी सन्तों, ज्ञानी धर्मात्माओं की वाणी, जिनवाणी कहलाती है। जो पूर्णता के लिए प्रयत्नशील हैं, अतीन्द्रिय आनन्द के भोजी एवं विषय-वासनाओं की भावना से अत्यन्त दूर, ज्ञान-ध्यान और तप में लीन हैं, वे मुनिराज ही हमारे गुरु कहलाते हैं।

मुनिराज की अन्त:परिणति को दर्शाते हुए रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है कि —

**विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।**
**ज्ञानध्यानतपोरक्तः तपस्वी स प्रशस्यते॥10॥**

*अर्थात्*—जो पाँच इन्द्रियों के विषयों की आशा, अर्थात् वाँछा से रहित हों; छह काय के जीवों का जिसमें घात होता है, ऐसे आरम्भ से रहित हों; अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग समस्त परिग्रहों से रहित हों; ज्ञान-ध्यान-तप में आसक्त हों, वे तपस्वी, अर्थात् गुरु हैं, वे ही प्रशंसनीय हैं।

इसी भाव को 'मेरी भावना' काव्य में पण्डित जुगलकिशोरजी 'मुख्त्यार' ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

विषयों की आशा नहीं जिनको साम्यभाव धन रखते हैं,
निज-पर के हित सान में जो निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दु:ख समूह को हरते हैं।

अनेक ग्रन्थों के आधार पर पण्डित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ (पृष्ठ-3) में मुनिदशा का सजीव चित्रण इस प्रकार किया है—

'जो विरागी होकर, समस्त परिग्रह का त्याग करके, शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अङ्गीकार करके – अन्तरङ्ग में तो उस शुद्धोपयोग द्वारा अपने को आपरूप अनुभव करते हैं, परद्रव्य में अहंबुद्धि धारण नहीं करते, तथा अपने ज्ञानादिक स्वभाव ही को अपना मानते हैं, परभावों में ममत्व नहीं करते, तथा जो परद्रव्य व उनके स्वभाव ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं, उन्हें जानते तो हैं परन्तु इष्ट-अनिष्ट मानकर उनमें राग-द्वेष नहीं करते; शरीर की अनेक अवस्थाएँ होती हैं, बाह्य नाना निमित्त बनते हैं परन्तु वहाँ कुछ भी सुख-दु:ख नहीं मानते तथा अपने योग्य बाह्य क्रिया जैसे बनती है, वैसे बनती है, खींचकर उनको नहीं करते तथा अपने उपयोग को बहुत नहीं भ्रमाते हैं, उदासीन होकर निश्चलवृत्ति को धारण करते हैं तथा कदाचित् मन्दराग के उदय से शुभोपयोग भी होता है – उससे जो शुद्धोपयोग के बाह्य साधन हैं, उनमें अनुराग करते हैं परन्तु उस रागभाव को हेय जानकर दूर करना चाहते हैं तथा तीव्र कषाय के उदय का अभाव होने से हिंसादिरूप अशुभोपयोगपरिणति का तो अस्तित्व ही नहीं रहा है – ऐसी अन्तरङ्ग (अवस्था) होने पर बाह्य दिगम्बर सौम्यमुद्राधारी हुए हैं। शरीर का सँवारना आदि विक्रियाओं से रहित हुए हैं; वनखण्डादि में वास करते हैं; अट्ठाईस मूलगुणों का अखण्डित पालन करते हैं; बाईस परीषहों को सहन करते हैं; बारह प्रकार के तपों को आदरते हैं; कदाचित् ध्यानमुद्रा धारण करके प्रतिमावत् निश्चल होते हैं; कदाचित् अध्ययनादिक बाह्य धर्मक्रियाओं में प्रवर्तते हैं; कदाचित् मुनिधर्म के सहकारी शरीर की स्थिति के हेतु योग्य आहार-विहारादि क्रियाओं में सावधान होते हैं।

— ऐसे जैन मुनि हैं, उन सबकी ऐसी ही अवस्था होती है।'

वर्तमान शताब्दी के सर्वाधिक चर्चित व्यक्तित्व एवं हमारे जीवनशिल्पी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अन्तरङ्ग में ऐसे मुनि भगवन्तों के प्रति अपार भक्तिभाव तो था ही, वे स्वयं भी उस दशा की भावना भाते थे – जो उनके इन विचारों से स्पष्ट परिलक्षित होता है —

'जैसे, पिता को देखते ही पुत्र को हर्ष होता है; उसी प्रकार अपने धर्मपिता को देखते ही धर्मात्मा के मन में हर्ष होता है। जिसे स्वप्न में भी ऐसे दिगम्बर सन्त के दर्शन के प्रति अरुचि का भाव आता है, वह जीव, पापी है। अरे! देवता भी जिनके चरणों में नमते हैं, कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसे महान सन्त भी जिनके लिये धन्य-धन्य कहते हैं – ऐसे दिगम्बर सन्त - मुनियों के प्रति जिस जीव को प्रमोद-भक्ति-बहुमान नहीं आता, वह जीव, मिथ्यादृष्टि है। *( अष्टपाहुड़ प्रवचन, 185 )*

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के आराधक वीतरागता के पिण्ड, मुनि चले आ रहे हों, वह तो मानो साक्षात् मोक्षतत्त्व आया है। अहा! ऐसी मुनिदशारूप जिनमुद्रा जिसे नहीं रुचती, उसे आराधना का प्रेम ही नहीं है। ऐसी जिनमुद्राधारक मुनि के साक्षात् दर्शन होने पर मुमुक्षु जीव का हृदय आराधना के प्रति, भक्ति से उछल पड़ता है।

अरे! स्वप्न में भी जिसे ऐसी मुनिदशा के प्रति अरुचि आये अथवा उसके प्रति अवज्ञा हो, वह जीव गहन भव वन में भटकता है, क्योंकि उसे आराधना के प्रति तिरस्कार है। धर्मी को तो स्वप्न में भी वीतरागी सन्त-धर्मात्मा का बहुमान आता है। स्वप्न में भी मुनि इत्यादि धर्मात्मा के दर्शन होने पर भक्ति से धर्मी का रोम-रोम उल्लसित हो जाता है।

*( भावपाहुड़ पर प्रवचन से )*

अहो! मुनिवर तो आत्मा के परम आनन्द में झूलते-झूलते मोक्ष की साधना कर रहे हैं। आत्मा के अनुभवपूर्वक दिगम्बर चारित्रदशा द्वारा मोक्ष की सिद्धि होती है। **दिगम्बर साधु; अर्थात्, साक्षात् मुक्ति का मार्ग। अहो! ये तो छोटे सिद्ध हैं!** अन्तर चिदानन्दस्वरूप में झूलते-झूलते बारम्बार शुद्धोपयोग द्वारा निर्विकल्प आनन्द का अनुभव करते हैं। पञ्च परमेष्ठी की पंक्ति में जिनका स्थान है, ऐसे मुनिराज की महिमा की क्या बात? **ऐसे**

**मुनिराज के दर्शन हों तो भी महान आनन्द की बात है। ऐसे मुनिवरों के तो हम दासानुदास हैं। हम उनके चरणाविन्द को नमन करते हैं। धन्य मुनिदशा! हम भी इस दशा की भावना भाते हैं।**

*( - गुरुदेवश्री के वचनामृत, 142, पृष्ठ 90 )*

सम्यग्दर्शनसहित चारित्रदशा होती है, वहाँ बाहर में भी दिगम्बर द्रव्यलिङ्ग होता है; इस प्रकार अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग वीतरागी जिनमुद्रा धारण करनेवाले सन्त मुनि स्वाधीन आत्मसुख का अनुभव करते हैं। आचार्यदेव स्वयं ऐसे स्वाधीन सुख का अनुभव करते हैं। ऐसी जिनमुद्रा धारक धर्मात्मा मुनियों के दर्शन में जिसे प्रमोद और भक्ति नहीं आती, वह जीव, आराधना से भ्रष्ट वर्तता हुआ संसार में ही भ्रमण करता है।

धर्मी जीव तो ऐसे आराधक मुनियों को देखते ही प्रमुदित होता है कि वाह धन्य आपकी आराधना! धन्य आपकी चारित्रदशा!! धन्य आपका अवतार!!! आप साक्षात् मोक्ष का साधन कर रहे हैं। इस प्रकार धर्मी जीव, प्रमोदपूर्वक अपनी रत्नत्रय की आराधना की भावना पुष्ट करता है।'

*( भावपाहुड़ पर प्रवचन से )*

मुनिदशा के सम्बन्ध में गुरुदेवश्री के चिन्तन की वास्तविक वस्तुस्थिति ऐसी होने पर भी कतिपय निहित स्वार्थों के कारण पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं उनके अनुयायियों पर मुनि विरोधी होने के आरोप सदा से लगाये जाते रहे हैं। यद्यपि वे आरोप, मात्र अनर्गल कल्पना ही हैं, तथापि उससे सामाजिक वातावरण तो दूषित होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री पर मुनि विरोधी होने का अनर्गल आरोप शायद इसलिए भी लगाया गया कि उन्होंने कभी शिथिलाचार एवं शिथिलाचारियों का समर्थन नहीं किया। उन्होंने आगम, युक्ति और तर्क के आधार पर अपनी बात को रखा और उसने शिथिलाचार के विरुद्ध एक सशक्त वातावरण का निर्माण किया। शायद यही कारण रहा कि शिथिलाचार के समर्थक वर्ग द्वारा उन्हें मुनि विरोधी कहा जाने लगा।

यदि शिथिलाचार का निषेध और मुनि के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन ही मुनि-विरोध है तो आचार्य कुन्दकुन्द, वट्टकेर, सकलकीर्ति,

गुणभद्र, समन्तभद्र इत्यादि सभी वीतरागी सन्त, मुनि-विरोधी सिद्ध हो जाएँगे, क्योंकि उन्होंने अपने ग्रन्थों में कहीं भी शिथिलाचार का समर्थन या पोषण नहीं किया है, अपितु उसके विरुद्ध दृढ़तापूर्वक अपनी लेखनी चलाई है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने भी उन्हीं वीतरागी सन्तों की दिव्यदेशना को अपनी सरलतम भाषा में प्रस्तुत कर, सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज पर अपरिमित उपकार किया है।

यद्यपि दिगम्बर जैन समाज का बहुभाग इन तथ्यों से भलीभाँति परिचित है, तथापि कतिपय निहित स्वार्थी लोगों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री एवं उनके अनुयायियों के विरुद्ध मिथ्या दुष्प्रचार किया जाता रहा है और वर्तमान में भी कुछ लोग इस प्रकार के प्रचार को हवा देते हुए अपने स्वार्थ साधना की सिद्धि में लगे हुए हैं। यद्यपि इस सन्दर्भ में गुरुदेवश्री के विचार अत्यन्त स्पष्ट हैं जो समय-समय पर उनसे पूछे गये प्रश्नोत्तरों के रूप में भी अभिव्यक्त हुए हैं।

भाई! सुन तो सही, मुनि के तो हम दासानुदास हैं, परन्तु उनमें सच्चा मुनिपना होना चाहिए। अहा! मुनिदशा अर्थात् क्या? भाई! मुनि तो परमेश्वरपद की केवलज्ञान भूमिका के निकट आ गये हैं। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप धारावाही परिणमन प्रगट हुआ हो, उसे मुनि कहते हैं। अहा! धन्य अवतार! धन्य जीवन! ऐसे मुनि को कौन नहीं मानेगा? यहाँ कहते हैं कि ऐसे अगाध शक्तिवान चैतन्यचक्रवर्ती को ग्रहण कर, उसका अन्तर में उग्र आश्रय कर तो सच्चा मुनिपना प्रगट होगा। *( - गुरुदेवश्री के वचनामृत, पृष्ठ 311 )*

जिनागम में जहाँ वीतरागी जिनमुद्रा का यथोचित् विनय, सम्मान, बहुमान न करनेवालों का जमकर निषेध किया है, वहीं मात्र बाह्य मुद्रा धारण कर लेने मात्र से ही कोई पूज्य नहीं हो जाता। इस बात के भी स्पष्ट उल्लेख जिनागम में उपलब्ध हैं। जैसा कि सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द ने अष्टपाहुड़ की गाथा-27 में कहा है—

**नापि देहो वंद्यते नापि च कुलं नापि च जातिसंयुक्तः।**
**का वंद्यते गुणहीनः न खलु श्रमणः नैव श्रावकः भवति॥27॥**

मुनिदशा तो वास्तव में संवर-निर्जरा की मूर्तिमान दशा होती है और संवर-निर्जरा सुखरूप तथा सुख का कारण होने से उस दशा के धारक मुनिराज भी परम आनन्दभोजी होते हैं। आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने तो श्रामण्य को अंगीकार करने का उद्देश्य ही यह बताया है कि यदि तुम दु:खों से परिमुक्त होना चाहते हो तो श्रामण्य को अंगीकार करो। आचार्यदेव का मूल कथन इस प्रकार है—

**एवं पणमिय सिद्धे जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे।**
**पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं ॥201॥**

मुनिराज समतारस के पिण्ड होते हैं। वे गृहस्थोचित लौकिक कार्य—जैसे जिनमन्दिरों का निर्माण, धर्मशाला इत्यादि का निर्माण, गृहस्थोचित पूजन, विधान, पंच कल्याणक आदि तथा उनमें की जानेवाली किसी भी प्रकार की क्रियाओं से सर्वत: विरत रहते हैं, क्योंकि वह क्रियायें गृहस्थदशा के योग्य होने से मुनिराज के द्वारा कदापि करनेयोग्य नहीं हो सकती। तथापि वर्तमान में इन्हीं सब बातों को आधार बनाकर मुमुक्षु समाज एवं गुरुदेवश्री को मुनि विरोधी सिद्ध करने का मिथ्या एवं असफल प्रयास किया जा रहा है, जो कदापि साकार होनेवाला नहीं है। मुनिराज जब शत्रु-मित्र के प्रति समभावी होते हैं, तब उन्हें 'यह मुझे नमोस्तु करता है, इसलिए मेरा भक्त है' और 'यह मुझे नमोस्तु नहीं करता, इसलिए यह मेरा शत्रु है'—ऐसा भाव कैसे उद्भवित हो सकता है? और ऐसा भाव रखनेवाले मुनिराज कैसे हो सकते हैं? यह भी एक विचारणीय तथ्य है।

मुनि भगवन्तों की आगमसम्मत व्यावहारिक चर्या का भी जहाँ नाम निशान न हो और जिनागम के प्रतिकूल एवं मुनिधर्म की मर्यादा के विरुद्ध जिनके आचरण हों, उन्हें यदि मुमुक्षु समाज मुनि के रूप में स्वीकार नहीं करती है और वन्दनीय एवं पूजनीय नहीं मानती है तो यह उसका मुनि विरोधी नहीं, अपितु सच्चे मुनि भक्त होने का प्रमाण है, क्योंकि ऐसा करके वास्तव में मुमुक्षु समाज एवं उसके आधार स्तम्भ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने वीतरागी सन्त कुन्दकुन्दाचार्य आदि महात्माओं की आज्ञा का अनुपालन किया है।

शिथिलाचार पोषक वर्ग वर्तमान में हीन संहनन एवं पंचम काल की दुहाई देकर अपने शिथिलाचार / स्वेच्छाचार / भ्रष्टाचार का संरक्षण चाहता है एवं मुमुक्षु जगत से भी यह अपेक्षा रखता है जो कि नितान्त असम्भव है। क्योंकि पहली बात तो यह कि मुनिदशा का जिनागम वर्णित यह स्वरूप त्रैकालिक होता है, इसमें काल, क्षेत्र और संहनन के अनुसार परिवर्तन सम्भव नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि यदि पंचम काल में मुनिचर्या के व्यावहारिक प्रवर्तन में किंचित् शिथिलता की सम्भावना होती तो अष्टपाहुड़, मूलाचार, मूलाचार प्रदीप, अनगार धर्मामृत, प्रवचनसार, भगवती आराधना इत्यादि मुनिधर्म के प्ररूपक ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख अवश्य होता। क्योंकि यह तो सम्भव नहीं है कि पंचम काल के सन्तों ने चतुर्थ काल के सन्तों के लिये इन ग्रन्थों की रचना की हो अथवा सम्भव यह भी नहीं है कि उनके अनुसार ग्रन्थ रचना के समय की परिस्थिति और वर्तमान परिस्थिति में जमीन-आसमान का अन्तर है, इसलिए मुनिधर्म में भी समय के अनुसार बदलाव होना चाहिए। वह इसलिए कि यह जिनागम में वर्णित मुनिधर्म का व्यावहारिक स्वरूप भी तीन लोक-तीन काल के ज्ञाता सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि के अनुसार ही प्रतिपादित किया गया है और यह सम्भव ही नहीं है कि तीर्थंकर सर्वज्ञ परमात्मा के दिव्यज्ञान में आगामी काल में समागत परिस्थितियाँ अज्ञात हों, इसलिए काल और संहनन का बहाना बनाकर स्वयं मुनिधर्म की व्यावहारिक मर्यादाओं से दूर वर्तते हुए भी मुमुक्षु समाज अथवा पूज्य गुरुदेवश्री से स्वयं को मुनियोग्य मान-सम्मान की अपेक्षा रखते हैं, यह जिनशासन विरोधी घोर अनीति है। इस सन्दर्भ में आचार्य कुन्दकुन्द का निम्न कथन सदैव अनुप्रेक्षणीय है—

**ये दर्शनेषु भ्रष्टाः पादयोः पातयंति दर्शनधरान्।**
**ते भवंति लल्लमूकाः बोधिः पुनः दुर्लभा तेषाम् ॥12॥**

इन सभी तथ्यों को लक्ष्य कर, मेरे तीर्थधाम मङ्गलायतन प्रवास के दौरान वहाँ से प्रतिमाह प्रकाशित होनेवाली मङ्गलायतन मासिक पत्रिका के धन्य मुनिदशा सम्बन्धी 42 विशेषांक प्रकाशित किये गये हैं। साथ ही मुनिधर्म सम्बन्धी साहित्य धन्य मुनिदशा, भाग 1, 2, 3, 4 एवं धन्य

मुनिराज हमारे हैं (कथा संग्रह भाग 1 से 5) तक प्रकाशित किये गये हैं। इसके साथ ही तीर्थधाम मङ्गलायतन के प्रांगण में धन्यमुनिदशा प्रकल्प का निर्माण कर वीतरागी सन्तों की समग्र जीवनशैली को अद्भुत कलाकृतियों के माध्यम से समग्र जैनाजैन को दिगम्बरत्व के महान गौरव से परिचित कराने का कार्य अनवरतरूप से विगत 15 वर्षों से संचालित है। दिगम्बरत्व की गौरव गाथा का ऐसा अद्वितीय प्रकल्प अन्यत्र दुर्लभ है।

इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए अब मुनि भगवन्तों के अन्तर-बाह्य पवित्र जीवन एवं उनकी परिशुद्ध परिणति को दर्शानेवाले, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के विविध प्रवचन साहित्य में से चयनित 1008 बोलों का संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। जिसके प्रथम चरण के रूप में 108 वचनामृतों का प्रस्तुत संकलन 'सन्त साधु बनके विचरूँ' साधर्मीजनों के लाभार्थ उपलब्ध कराया जा रहा है। अवशेष भी शीघ्र उपलब्ध कराने का प्रयास है।

पूज्य गुरुदेवश्री के शताधिक प्रवचनोंग्रन्थों से संकलित यह संकलन निश्चित ही समाज में पूज्य गुरुदेवश्री एवं उनके अनुयायियों के सन्दर्भ में कतिपय स्वार्थी लोगों द्वारा फैलाये जा रहे मिथ्याभ्रम का प्रक्षालन तो करेगा ही, साथ ही गुरुदेवश्री के अन्तर में व्याप्त सच्चे भावलिंगी सन्तों के प्रति भक्ति एवं स्वयं मुनि बनने की उत्कृष्ट भावना का भी परिचय प्राप्त करायेगा।

यह संकलन पूज्य गुरुदेवश्री को मुनिभक्ति का सर्टिफिकेट दिलाने का प्रयास नहीं है, क्योंकि यह तो परम सत्य है कि इस युग में पूज्य गुरुदेवश्री ही सच्चे मुनिभक्त हैं। क्योंकि जो मुनि नहीं हैं, उन्हें मुनि नहीं मानना और सच्चे मुनिराजों को ही मुनिराज के रूप में स्वीकार कर अपनी श्रद्धा समर्पित करना, यही सच्चा मुनिभक्तपना है जो पूज्य गुरुदेवश्री के रोम-रोम में व्याप्त है।

प्रस्तुत संकलन ग्रन्थ में समाहित वचनामृतों को पढ़कर, समझकर जिन ग्रन्थों से इनका संकलन किया गया है, उन ग्रन्थों के अध्ययन की प्रेरणा के साथ अपनी बात को विराम देता हूँ।

**पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन**

बिजौलियां, जिला भीलवाड़ा (राज.)

ॐ

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं

# सन्त साधु बनके विचरूँ

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन साहित्य में से चयनित मुनिदशा के स्वरूप, महिमा, अन्तर्बाह्य परिणति से सम्बन्धित 108 वचनामृतों का संकलन

1

## मुनि बनने की भावना

सम्यग्दृष्टि की भावना तो मुनि बनने की ही होती है। वह विचारता है कि अहो! मैं कब चैतन्य में लीन होकर सर्व सङ्ग का परित्यागी होकर, मुनिमार्ग में विचरण करूँ। मुनि बनकर चैतन्य के जिस मार्ग पर तीर्थङ्कर विचरे, मैं भी उसी मार्ग पर विचरण करूँ – ऐसा धन्य स्वकाल कब आयेगा? धर्मीजीव, आत्मा के भानपूर्वक इस प्रकार मुनि बनने की भावना भाते हैं। ऐसी भावना होते हुए भी निज पुरुषार्थ की मन्दता और निमित्तरूप में चारित्रमोह की तीव्रता से कुटुम्बीजनों के आग्रहवश स्वयं ऐसा मुनिपद नहीं ले सके तो उस धर्मात्मा को गृहस्थपने में रहकर देवपूजा आदि षटकर्मों का पालन अवश्य करना चाहिए। *( – श्रावकधर्मप्रकाश )*

2

## मुनिराज के आगमन की प्रतीक्षा

भरत चक्रवर्ती जैसे धर्मात्मा भी भोजन के समय रास्ते पर आकर किन्हीं मुनिराज के आगमन की प्रतीक्षा करते थे और मुनिराज के पधारने पर परमभक्ति से आहारदान देते थे। **अहा! मानों आँगन में कल्पवृक्ष फला हो, उससे भी विशेष आनन्द धर्मात्मा को मोक्षमार्ग-साधक मुनिराज को अपने आँगन में देखकर होता है।** *( - गुरुदेवश्री के वचनामृत, २०, पृष्ठ १२ )*

3

## हम भी उस ही पन्थ के पथिक

**अहो! धन्य यह मुनिदशा!!** मुनिराज फरमाते हैं कि हम तो चिदानन्दस्वभाव में झूलनेवाले हैं; हम इस संसार के भोग हेतु अवतरित नहीं हुए हैं। अब हम अपने आत्मस्वभाव में प्रवृत्त होते हैं। अब हमारे स्वरूप में विशेष लीन होने का अवसर आया है। अन्तर आनन्दकन्द-स्वभाव की श्रद्धासहित उसमें रमणता हेतु जागृत हुए हमारे भाव में अब भङ्ग नहीं पड़ना है। अनन्त तीर्थङ्करों ने जिस पन्थ में विचरण किया, हम भी उस ही पन्थ के पथिक हैं।

*( -जिणसासणं सव्वं, ७५, पृष्ठ ४ )*

4

## मुनिराज जङ्गल में क्यों बसते हैं ?

सम्यग्दृष्टि को अन्तर में सिद्ध-समान अतीन्द्रिय आनन्द का आंशिक स्वाद आता है, उस स्वाद को अर्थात् स्वभाव के आलम्बन से विशेष अतीन्द्रिय आनन्द को प्रगट करने के लिए मुनिराज एकान्त निर्जन जङ्गल में बसते हैं। सम्यग्दृष्टि को मुनिदशा होने की ऐसी भावना अन्तर में बर्तती है कि 'मैं कब अन्तर-बाह्य निर्ग्रन्थ होऊँगा ?' *( - वचनामृत प्रवचन, गुजराती, ४/११३ )*

5

## ऐसे होते हैं मुनिराज के वचन

श्रीगुरु के वचन तत्कालबोधक हैं और रामबाण की तरह अमोघ हैं, आत्मतत्त्व-द्योतक हैं; अर्थात्, आत्मतत्त्व के स्वरूप को प्रकाशित करनेवाले हैं। **गुरुगम के बिना, स्वच्छन्दता से शास्त्र पढे तो वे शस्त्ररूप हो जाते हैं।** मुनि के वचन तो रामबाणवत् शुद्ध उपदेशरूप हैं, जो कान में पड़ते ही पात्र जीव को रामबाण जैसा काम करते हैं तथा वे आत्मतत्त्व-द्योतक हैं; अर्थात्, आत्मा को ही बतलाने की उनमें मुख्यता है। *( - सद्गुरु प्रवचनप्रसाद, गुजराती दैनिक, दिनाङ्क 24 अप्रैल से 27 अप्रैल 1951 )*

6

## ऐसे सन्तों की क्या बात करें ?

जिसे '**मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी**' कहा, वह सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक वस्तु है। **मुनिधर्म की तो बात ही क्या कहें! तीन कषाय के अभाव सहित जिनके अन्तर में प्रचुर आनन्द का अनुभव है** और बाह्य में जिसके वस्त्र का एक धागा भी नहीं है – ऐसे सन्तों की क्या बात करें! *( – अध्यात्म रत्नत्रय, पृष्ठ ३१ )*

7

## मुनिवरों को बाह्य विषयों की आसक्ति नहीं

जिस प्रकार घोर निद्रा में सोते हुए को आसपास की दुनिया का भान नहीं रहता, **उसी प्रकार चैतन्य की अत्यन्त शान्ति में स्थिर हुए मुनिवरों को जगत के बाह्य विषयों में किञ्चित् भी आसक्ति नहीं होती;** भीतर स्वरूप की लीनता में से बाहर निकलना जरा भी अच्छा नहीं लगता; आसपास जङ्गल के बाघ और सिंह दहाड़ रहे हों, तथापि उनसे जरा भी नहीं डरते या स्वरूप की स्थिरता से किञ्चित् भी चलायमान नहीं होते। *( – गुरुदेवश्री के वचनामृत, २११, पृष्ठ १२८ )*

8

## णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व साहूणं

जिस प्रकार व्यापारी लोग, दीपावली आदि के अच्छे मौसम में व्यापार की धूम मचाकर थोड़े ही समय में बहुत कमाई कर लेते हैं; उसी प्रकार धर्मात्मा जीव, धर्मसाधना के मौसमरूप चारित्रदशा में धर्म की धूम मचाकर महान मोक्ष का वैभव प्राप्त कर लेते हैं। **धर्मसाधना का मौसम ही साधुपद कहलाता है।** उसी के लिए बारह भावनाएँ हैं। धर्मीजीव भावना भाता है कि अहा! चारित्र-दशा किसे अच्छी न लगेगी? **हम तो ऐसी चारित्रदशावन्त मुनियों के दास हैं। उन्हें हम 'णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व साहूणं' कहकर अत्यन्त बहुमान से नमस्कार करते हैं।**

*( - वीतराग-विज्ञान, भाग ५, पृष्ठ ११२ )*

9

## दिगम्बर सन्तों द्वारा रचित ग्रन्थों का प्रभाव

अहो! दिगम्बर सन्तों का कोई भी ग्रन्थ लो, वह आत्मा को चैतन्यस्वभाव में स्तम्भित कर देता है।

*( - परमागमसार, ७१० )*

10

## मुनिराज और सर्वज्ञ में भेद नहीं

मुनिराज इस प्रकार परिणमित हो गये हैं, **मानो वीतरागता की मूर्ति हों! राग-द्वेष के अंशरहित मात्र वीतरागता की मूर्ति हैं मुनिराज!** मुनि को तो तीन कषाय चौकड़ी का अभाव हुआ है, उन मुनिराज को शान्ति का सागर उछलता है। भगवान आत्मा स्वभाव से वीतरागमूर्ति है और **मुनिराज तो पर्याय में वीतराग की मूर्ति हैं।** श्री नियमसार के कलश में तो कहा है कि अरेरे! हम जड़मति हैं कि मुनिराज में और सर्वज्ञ में भेद मानते हैं। **अहाहा! मुनिराज तो मानों साक्षात् वीतराग की मूर्ति हों, इस प्रकार परिणमित हो गये हैं; उन्हें मुनि कहते हैं।** *( - द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, ८९२, पृष्ठ २०४ )*

11

## मैं वीतरागी सन्तों की पंक्ति में कब बैठूँगा

भगवान के दीक्षाकल्याणक प्रसङ्ग में स्वयं अन्तर में ऐसी भावना होती है कि '**मेरी ऐसी परम वीतरागी निर्ग्रन्थदशा कब होगी ? मैं मुनि होकर आत्मध्यान में लीन कब होऊँगा ? मैं इन वीतरागी सन्तों की पंक्ति में कब बैठूँगा ?** *( - राजकोट : वीर सं. २४७६, फाल्गुन शुक्ल दशमी, दीक्षाकल्याणक दिवस )*

12

## मुनिराज धर्म के स्तम्भ

मुनिजनों की अनुपस्थिति में उनकी भक्ति करनी चाहिए। जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा को प्राप्त हों व बाह्य में नग्न-दिगम्बरदशा हो, उन्हें मुनि कहते हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य, श्री अमृतचन्द्राचार्य, श्री पूज्यपाद-स्वामी, श्री समन्तभद्राचार्य आदि महान् आचार्यों ने सर्वज्ञदेव की वाणी के अनुसार शास्त्रों की रचना कर, धर्म को टिकाया है तथा जो धर्म के स्तम्भ हैं; उनकी भक्ति-प्रशंसा-बहुमान करना चाहिए व उनका उपकार गाना चाहिए। *( - परमागमसार, ८०९ )*

13

## मुनिराजों को सैकड़ों बार नमस्कार

मुनिराज तो संवर और निर्जरा के मूर्तिमान स्वरूप हैं। मुनि-विरोध का अर्थ है - संवर और निर्जरातत्त्व की अस्वीकृति। जो सात तत्त्वों को भी न माने, वह कैसा जैन ? हमें तो मुनिराजों के स्मरणमात्र से रोमाञ्च हो आता है। 'ण्मो लोए सव्व साहूणं' के रूप में हम तो सभी त्रिकालवर्ती मुनिराजों को प्रतिदिन सैकड़ों बार नमस्कार करते हैं। *( - चैतन्य चमत्कार, पृष्ठ-३६ )*

14

## वस्त्रसहित मुनिपना अवपादमार्ग भी नहीं

**वस्त्रसहित मुनिपना, अपवादमार्ग नहीं; किन्तु मिथ्यादृष्टिपना है।** अपवादमार्ग उसे कहा है, जिसमें मुनिपद रहे — ऐसी क्रिया करना, वस्त्र को अपवाद नहीं कहा है। वस्त्र रखने से तो गृहस्थवत् हो जाता है; इसलिए वह अपवादमार्ग नहीं है। दिगम्बर मुद्राधारी कमण्डलु-पिच्छीसहित, आहार -विहार, उपदेशदिक में प्रवर्तता है, वह अपवादमार्ग है और सर्वप्रवृत्ति को छोड़कर ध्यान में रहकर शुद्धोपयोगी होता है, वह उत्सर्गमार्ग है। अन्तर आनन्द में लीन होना मुख्यमार्ग है। अत: जहाँ तक अपवाद अर्थात् कमजोरी है, वहाँ तक केवलज्ञान नहीं होता। आनन्दस्वरूप आत्मस्वभाव में लीन होना ही मुख्यमार्ग है, उत्सर्गमार्ग है। आहार-पानी लेना, विहार-उपदेशादि का विकल्प उत्पन्न होना, अपवादमार्ग है, अन्य अपवादमार्ग नहीं है।

*( - अष्टपाहुड़ प्रवचन, पृष्ठ ३२५ )*

15

## मुनिदशा के बिना मुक्ति नहीं

मुनिराज, निर्मल विज्ञानघन में निमग्न हैं। अहा! कैसी भाषा का प्रयोग किया है। साधुपना कोई अलग ही है भाई! विज्ञान का घन—ऐसा जो निज भगवान आत्मा, उसमें वे अन्तर्निमग्न हैं। निमग्नपना, वह पर्याय है—परन्तु वह पर्याय त्रैकालिक एकाकार विज्ञानघन-स्वभाव में निमग्न है, डूबी हुई है। अहा! इस **दशा के बिना मुक्ति नहीं** है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण चतुर्थ गुणस्थान में होते हैं, परन्तु इतने से ही सम्पूर्ण मुक्ति नहीं होती। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक प्रचुर स्वसम्वेदनस्वरूप निर्ग्रन्थ चारित्रदशा आये, उससे मुक्तिदशा प्राप्त होती है। बाह्य में वेष धारण कर ले, नग्नता ले ले और पञ्च महाव्रतादि का पालन करे, वह कोई मुनिदशा नहीं है।

*( - वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ १८४ )*

16

## वस्त्र-पात्र सहित मुनिपना मानना मिथ्यात्व

**प्रश्न** - परवस्तु बन्ध का करण नहीं है तो फिर वस्त्र के होने अथवा न होने से मुनिपने में क्या बाधा आती है ?

**उत्तर** - परवस्तु बन्ध का कारण नहीं है। वस्त्र कोई बन्ध का कारण नहीं है, परन्तु वस्त्र-पात्र रखने पर उसमें होनेवाला ममत्वभाव बन्ध का कारण है। वस्त्र-पात्र हो और उसके प्रति ममत्वभाव न हो — ऐसा सम्भव ही नहीं है; अतः जिनके वस्त्र-पात्र हैं, उनके ममत्वभाव भी है ही; फिर भी जो मुनिपना माने तो वह मिथ्यात्वभाव है और अनन्त संसार में भटकानेवाला भाव है। मोटर, बन्ध का कारण नहीं है, पर उसमें बैठने का रागभाव बन्ध का कारण है — ऐसा समझना चाहिए। जो परवस्तु को बन्ध का कारण मानते हैं, वे वस्तुस्वभाव को समझे ही नहीं है।

*( - परमागमसार, ८५४ )*

17

## ऐसे होते हैं हमारे जैन मुनि महाराज!

**मुनिराज को वीतरागता फली-फूली है;** जिस प्रकार फूल की कली खिल उठती है, उसी प्रकार वीतरागता खिल उठी है। श्रेणिक राजा ने यशोधर मुनि के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया था; करोड़ों चीटियाँ शरीर पर चढ़ गयी और जगह-जगह काटा - ऐसे उपसर्ग के समय भी मुनि खेद-खिन्न नहीं हुए थे, परन्तु अन्तर में वीतरागी आनन्द में क्रीड़ा करते थे। चेलना रानी कहने लगी— **देखो! ऐसे होते हैं हमारे जैन मुनि! अन्तर आनन्द की मस्ती में उपसर्ग के प्रति उनका लक्ष्य नहीं जाता।** अन्तर में एकदम अतीन्द्रिय आनन्द की मस्ती में उपसर्ग के प्रति उनका लक्ष्य ही नहीं जाता। अन्तर में एकदम अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति में लीन हो गये हैं। **यहाँ तो कहते हैं कि मुनिराज को प्रतिकूलता में खेद नहीं है और अनुकूलता में हर्ष नहीं है।**

*( - वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ २५२ )*

18

## आत्मा का भाव होने पर भी वस्त्रसहित मुनिपना नहीं

भगवान का इसी भव से मोक्ष जाना निश्चित है, परन्तु बाह्य में समस्त परिग्रह छोड़कर, वीतरागी मुनि हुए बिना भगवान को भी केवलज्ञान नहीं होता। तीर्थङ्कर भगवन्तों ने तो ऐसी दशा से केवलज्ञान साधा है और अन्य जीव इससे विरुद्ध माने तो वे जीव तीर्थङ्कर के मत से बाह्य हैं। निमित्त से लाभ-हानि मानें तो सम्यग्दर्शन भी नहीं है तो फिर मुनिपद, आचार्यपद, तो उसे होगा ही कैसे? जिसे आत्मा का भान हो, उसे भी वस्त्रसहित मुनिपना नहीं होता।

*( - प्रवचनसार, २१९, सद्गुरु प्रवचन प्रसाद, दैनिक, २०-४-१९५१ )*

19

## केवलज्ञान का हृदय खोल दिया

दिगम्बर सन्तों ने जो बात कही है, वह अन्य कोई कह ही नहीं सकता। वह बात अन्य मत में तो होती ही नहीं। अहो! केवलज्ञान के साधकों ने केवली का हृदय खोल दिया है।*( - दृष्टि ना निधान, बोल २६४ )*

20

## जगत के धर्मपिता

अहो! मुनि भगवन्त को स्वभावसन्मुखता की उग्रता वर्तती है। जिनके रोम-रोम में वैराग्य की धारा बहती हो, जिन्हें देखते ही ऐसा लगे मानो जगत के परमेश्वर हों। जिनको आत्मा के असंख्य प्रदेशों में निर्विकल्प आनन्दधारा बहती है, जो अन्तरङ्ग स्वरूप में झूलते हैं, ऐसे मुनि जगत के धर्मपिता हैं। अहो! अभी तो ऐसे वीतरागी सन्त-मुनि के दर्शन भी नहीं हैं। अभी तो लोगों को ऐसी मुनिदशा का स्वरूप समझना भी कठिन हो गया है। *( - प्रवचनसार, २१२, सद्गुरु प्रवचन प्रसाद, दैनिक, १६-४-१९५१ )*

21

## जैनदर्शन की मुद्रा

अहो! मुनिदशा तो अलौकिक दशा है - वह तो जैनदर्शन की मुद्रा है। उनकी ऐसी दशा हो गयी है कि मानो चलते-फिरते सिद्ध! ऐसा मुनिदशा का स्वरूप है। जो उसको विपरीत मानता है, उसे जैनदर्शन की खबर नहीं है। उसकी दृष्टि में भूल है, ज्ञान में भूल है, चारित्र में भूल है, तप में भूल है; वह जीव मार्ग से भ्रष्ट है। *( - अष्टपाहुड़ प्रवचन, १/१० )*

22

## वस्त्ररहितपने और मुनिपने का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध

जैसे अन्तरङ्ग में माँसभक्षण का भाव न हो तो वहाँ 'माँस अच्छा है' - ऐसी भाषा भी नहीं होती तथा अन्तरङ्ग में ब्रह्मचर्य का भाव हो वहाँ 'स्त्री का सङ्ग अच्छा है' - ऐसी भाषा भी नहीं होती। यद्यपि भाषा तो भाषा के कारण होती है, तथापि भाव और भाषा का ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। इसी प्रकार वस्त्ररहितपने और मुनिपने का भी ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। अन्तरङ्ग में मुनिदशा का निर्मल वीतरागभाव हुआ हो और भाषा में ऐसा कहे कि 'वस्त्रादि रखने में भी बाधा नहीं है' - ऐसा होता ही नहीं; जहाँ वस्त्रादि रखने की बुद्धि है, वहाँ मुनिपना नहीं है। इस प्रकार होने से सर्वज्ञ भगवन्तों ने वस्त्रादि परिग्रह का निषेध किया है।

*( - प्रवचनसार, २१९, सद्गुरु प्रवचन प्रसाद , दैनिक, २०-४-१९५१ )*

23

## जगत में ऐसी कोई प्ररूपणा नहीं जो सबको अच्छी लगे

अहा! चरणानुयोग सूचक चूलिका में आचार्य भगवन्त ने मुनिदशा की कैसी अद्‌भुत और सरस बात स्पष्ट की है — ऐसी सरस बात सुनते ही पात्र जीव को प्रमोद आता है।

**प्रश्न** - वस्त्ररहित ही मुनिपना होता है और वस्त्रसहित मुनिपना माननेवाला कुगुरु है - ऐसा कहने से वस्त्रसहित मुनिपना माननेवाले को दुःख होगा; इसलिए ऐसा नहीं कहा होता तो ठीक था।

**उत्तर** - यथार्थ वस्तुस्थिति प्रसिद्ध करने से असत्य का निषेध तो हो ही जाता है। 'यह सत्य है' - इस प्रकार सत्य की स्थापना करने से 'इससे विरुद्ध असत्य है' - ऐसे असत्य का निषेध भी हो ही जाता है, यह अनेकान्त है।

मिथ्या माननेवाले को दुःख लगे तो वह उसके विपरीतभाव के कारण है, उसमें ज्ञानी क्या कर सकते हैं? जगत में ऐसी तो कोई प्ररूपणा नहीं है जो सबको अच्छी लगे; इसलिए यहाँ स्पष्टरूप से मुनिदशा का स्वरूप वर्णन करते हुए आचार्य भगवान ने कहा है कि

मुनिपना वस्त्ररहित होता है। अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग की स्थिति जैसी थी, वैसी स्पष्ट कह दी गयी है। इस काल में ऐसा कहने योग्य नहीं था और कह दिया गया है—ऐसा नहीं है, परन्तु जो सत्य कहने योग्य था, वही कहा गया है। ऐसी मुनिदशा का स्वरूप निश्चित करना चाहिए। भाई! मुनिदशा तो केवलज्ञान लेने के लिए चैतन्य के झूले में झूलती हुई दशा है।

*( - प्रवचनसार, २२०, सद्गुरु प्रवचन प्रसाद, दैनिक, २१-४-१९५१ )*

24

## केवली के आड़तिया दिगम्बर सन्त!

अहा! जैनदर्शन अलौकिक है और उसमें यह दिगम्बर दर्शन ही सच्चा जैनदर्शन है। इस बात में लोगों को पक्षपात जैसा लगता है, परन्तु भाई! ऐसी बात दिगम्बर सन्तों / केवली के आड़तिया मुनिराजों के अलावा अन्य कहीं है ही नहीं, परन्तु वे सच्चे भावलिङ्गी मुनिवर! मात्र नग्न होकर मुनि हो जाना ही सच्चा मुनिपना नहीं है।

अहो! भावलिङ्गी सन्तों ने पाताल तोड़कर, वस्तु के तल की अर्थात् अन्दर की अजब-गजब की बातें की हैं। *( - प्रवचन-रत्न चिन्तामणि, १/३५० )*

25

## अहाहा! मुनिपना तो ऐसा है भाई!

चक्रवर्ती के पुत्र राजकुमार, पूर्ण सुख-सुविधाओं में जिनका पालन -पोषण हुआ हो, वे भी जब सम्यग्दर्शनसहित आत्मा का विशेष अनुभव करने के लिए वन में जाते हैं; तब कहते हैं - 'माता! मुझे कहीं अच्छा नहीं लगता, मुझे जहाँ अच्छा लगता है, ऐसे अपने स्वरूप में ही मैं जाना चाहता हूँ। मेरा नाथ भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से परिपूर्ण है; उसमें आवरण, अशुद्धि या अपूर्णता नहीं है। मेरा ज्ञायक प्रभु पूर्णानन्द का नाथ है, उसके आनन्द को लूटने के लिए, अनुभवने के लिए मैं तो जाता हूँ। अहाहा! मुनिपना तो ऐसा है भाई! *( - द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, बोल ६५२ )*

26

## मुनि को वन्दन नहीं करनेवाला दर्शनभ्रष्ट

अहो! धन्य चारित्रदशा। अहो! वैसी दशा प्राप्त होना कठिन है। अहो! ऐसे मुनि को सम्यग्दृष्टि वन्दन नहीं करे - ऐसा नहीं होता। जो दर्शनभ्रष्ट पुरुष ऐसे मुनि को वन्दन नहीं करता, वह एकेन्द्रिय में जाएगा।

*( अष्टपाहुड़ प्रवचन, पृष्ठ १२९ )*

27

## सिंहवृत्तिवाले मुनिराजों को गृहस्थों की अपेक्षा नहीं

अहा! मुनिवर तो जगत से एकदम निस्पृह और सिंहवृत्ति से विचरनेवाले हैं। मुनिपना, गौशाला के ढोर जैसा नहीं होता। जिस प्रकार सिंह को गोली लगे तो वह कहीं गौशाला में पट्टियाँ नहीं बँधवाता; इसी प्रकार मुनिराज को गृहस्थों की अपेक्षा नहीं होती, आरम्भ नहीं होता, परिग्रह आदि नहीं होता,... जिसको परिग्रह हो, उसे तो गृहस्थों की अपेक्षा होती है, वह तो गौशाला के पशु की तरह गृहस्थों का गुलाम है। उसे वस्त्र धोने इत्यादि का आरम्भ है, असंयम है, वस्त्र की मूर्च्छा है। ऐसा वह जीव आत्मा में लीन होकर आत्मा को किस प्रकार साध सकता है?

*( - प्रवचनसार, २२१, सद्गुरु प्रवचन प्रसाद, दैनिक, २१-४-१९५१ )*

28

## हम तो साधुओं के दासानुदास हैं

**प्रश्न - आपको लोग गुरुदेव कहते हैं ? क्या आप साधु हैं; गुरु तो साधु होते हैं।**

**स्वामीजी** - साधु तो नग्न दिगम्बर छठवें-सातवें गुणस्थान की भूमिका में झूलते भावलिङ्गी वीतरागी सन्त ही होते हैं। हम तो साधुओं के दासानुदास हैं। अहा! वीतरागी सन्त श्री कुन्दकुन्दाचार्य, श्री अमृतचन्द्र आचार्य आदि मुनिवरों के स्मरणमात्र से हमारा रोमाञ्च हो जाता है।

भाई! गोपालदास बरैया को भी लोग गुरु कहते थे। देव-शास्त्र-गुरुवाले गुरु तो पञ्च परमेष्ठी में आचार्य, उपाध्याय, साधु ही हैं। हमसे लोग अध्यात्म सुनते हैं, सीखते हैं; अतः गुरुदेव कहते हैं। भाई! हम तो कई बार कहते हैं कि वस्त्रादि रखे और अपने को देव-शास्त्र-गुरुवाला गुरु माने-मनवावे, वह तो अज्ञानी है। अधिक हम क्या कहें।

*( - चैतन्य चमत्कार, पृष्ठ ७ )*

29

## साक्षात् मोक्षतत्त्व! त्रिलोक के मुकुटमणि!!

जो श्रमण त्रिलोक के मुकुटमणि समान निर्मल विवेकरूपी दीपक के प्रकाश द्वारा, यथास्थित पदार्थ के निश्चय द्वारा, उत्सुकता छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो गये हैं, आनन्द की धारा में मस्त हो गये हैं, उपशमरस के साँचे में ढल गये हैं और उसमें से बाहर आने के लिए निरुद्यमी हो गये हैं; वन में बाघ, सिंह और भेड़िये चिंघाड़ते हों, तथापि निर्भय होकर स्वरूप के शान्तरस का / अतीन्द्रिय आनन्द का पान करते हैं– चूसते हैं, एक स्वरूप में ही अभिमुख होकर वर्तते हैं, उन श्रमण को साक्षात् मोक्षतत्त्व कहते हैं। अभी है तो साधकदशा, तथापि स्वरूप में ही अभिमुखरूप से वर्तते श्रमण को साक्षात् मोक्षतत्त्व कहते हैं।

**अहाहा! पञ्चमकाल के सन्त मुनि, पञ्चमकाल के श्रोता से यह कहते हैं। स्वरूप में वर्तते सन्त को साक्षात् मोक्षतत्त्व कहा है, क्योंकि उन्हें अल्पकाल में मोक्ष होना है, इसलिए उस अल्पकाल को गौण करके साक्षात् मोक्षतत्त्व कहते हैं।**

*( – द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, बोल ४८४ )*

30

## वैराग्य महल के शिखर के शिखामणि

मुनिराज का वैराग्य तो कोई और ही होता है। **'मुनिराज तो वैराग्यमहल के शिखर के शिखामणि हैं।'** वैराग्य का महल, उसका शिखर और उसके शिखामणि। अहाहा! अन्तर में वैराग्य एवं आनन्द की कैसी दशा!

नियमसार के टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभ-मलधारिदेव तो यहाँ तक कहते हैं कि मुनिराज अर्थात् स्ववश योगी को भूमिकानुसार किञ्चित् राग का मन्द अंश है, तथापि सर्वज्ञ-वीतराग में और उन स्ववश योगियों में कुछ भी भेद नहीं है; अरे रे! हम जड़ हैं कि उनमें भेद मानते हैं। सच्चे भावलिङ्गी सन्त की यह बात है। बाह्य द्रव्यलिङ्ग तो अनन्तबार धारण किया, नग्न हुआ, हजारों रानियाँ छोड़ीं - वह कोई वैराग्य नहीं है, वह कोई त्याग नहीं है।

भीतर पूर्णानन्दस्वभाव में जाने पर वहाँ स्वरूप की आसक्ति (लीनता) होती है और राग की आसक्ति छूट जाती है - ऐसा ज्ञान एवं वैराग्य ज्ञानी के अन्तर में वर्तता है। *( - वचनामृत प्रवचन, २/११८ )*

31

## गणधरों का नमस्कार जिसे प्राप्त हो, वह साधु पद

शान्त... शान्त... मुनिराज को अन्दर में भी अकषाय परिणमन है और बाहर में वाणी तथा शरीर में भी शान्तपना दिखता है। अहो! वे तो उपशमरस / अकषायरस में जम गये हैं। उन्हें मुनि कहते हैं, जिन्हें गणधर का नमस्कार पहुँचता है। देखो! गणधर भी शास्त्र रचना के समय नमस्कार मन्त्र में कहते हैं कि हे सन्तों! तुम्हारे चरणों में मेरा नमस्कार हो। यद्यपि अन्य साधु, गणधर से छोटे हैं; इसलिए गणधर उन्हें बाहर में व्यवहार से नमस्कार नहीं करते, परन्तु वे नमस्कार मन्त्र की रचना करते हैं, उसमें साधु को नमस्कार आ जाता है। जिन्हें चार ज्ञान प्रगट हुए हैं, जिन्होंने अन्तर्मुहूर्त में द्वादशाङ्ग की रचना की है, जो तीर्थङ्कर के वजीर/ दीवान हैं, ऐसे गणधरों का नमस्कार जिसे प्राप्त हो, वह साधुपद कैसा होता है?

अहा! तीर्थङ्कर धर्मराजा हैं और गणधर उनके दीवान हैं। फिर भी जब वे शास्त्र की रचना करते हैं, तब **'णमो लोए सव्व आइरियाणं'** कहते हैं। वे आचार्य कैसे होंगे, जिनको गणधर का नमस्कार प्राप्त होता है? गणधर नमस्कार करें, वे ऐसे होते हैं कि जिनका

अनाहारी परिणमन है, जिनकी वीतरागी दशा है और जिन्हें आहार लेने का राग उत्पन्न हो तो निर्दोष आहार लेने की वृत्ति है — ऐसे अन्तरङ्ग में रमणतावाले साधु अथवा आचार्य बाहर और अन्दर से शान्त होते हैं।

*( - प्रवचन-रत्न चिन्तामणि, ३/१३२ )*

32

**आकाश जैसे निरालम्बी मुनि जैनधर्म के स्तम्भ :**

अहो! कुन्दकुन्दस्वामी तो भगवान थे.... उन्होंने तो तीर्थङ्कर जैसा काम किया है.... और अमृतचन्द्राचार्य उनके गणधर जैसे थे। सन्तों ने महान आश्चर्यजनक कार्य किये हैं। अहो! आकाश जैसे निरालम्बी मुनि तो जैनधर्म के स्तम्भ हैं। निरालम्बी आत्मा का स्पर्श करके उनकी वाणी निकली है। ऐसे वीतरागी सन्तों का, चैतन्यपद को प्राप्त करानेवाला परम हित-उपदेश प्राप्त करके आत्मा को ऊपर ले जाना अर्थात् अन्तर्मुख होकर आत्मा की उन्नति करना ही जिज्ञासु आत्मार्थी जीवों का कर्तव्य है।

*( - आत्मप्रसिद्धि, पृष्ठ ५१८ )*

33

## मुनि का रूप : जैनदर्शन की मुद्रा

जिसको ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा की दृष्टि हुई है और तदुपरान्त असङ्गस्वभाव में लीन होकर मुनिदशा प्रगटी है और बाहर में भी असङ्गदशा हो गई है – ऐसे मुनि का रूप जैनदर्शन की मुद्रा है। ऐसी अन्तर-बाह्य मुद्राधारक सन्त को देखकर जिसको प्रमोद नहीं आता और मत्सरभाव से उनकी निन्दा करता है, वह जीव मिथ्यादृष्टि है। उसको धर्म की प्रीति नहीं है।

*( अष्टपाहुड़ प्रवचन, पृष्ठ १८२ )*

34

## ऐसा धन्य अवसर कब प्राप्त होगा ?

चारित्रदशा के बिना मुक्ति नहीं है, धर्मात्मा श्रावक वैराग्यभावसहित सदा मुनिदशा की भावना भाता है।

तीर्थङ्करादि महापुरुष जिस चारित्र पन्थ में विचरण करके मोक्ष गये.... महापुरुषों के उस मार्ग में हम भी कब विचरेंगे, ऐसा धन्य अवसर हमारा कब आएगा। सम्पूर्ण प्रकार का बाह्याभ्यन्तर बन्धन या परिग्रह छोड़कर, निर्ग्रन्थरूप मुनि होकर और केवलज्ञान को साधकर मोक्ष प्राप्त करें। अहा! ऐसा अपूर्व अवसर हमारा कब आएगा। *( – छहढाला प्रवचन, ५/४४८ )*

35

## भव्यजीवों को सन्तों का आमन्त्रण

अपने अन्तर में अपूर्व, अतीन्द्रिय, शान्तरस का अनुभव करके, सन्त धर्मात्मा सम्पूर्ण जगत को शान्तरस के स्वाद लेने का आमन्त्रण देते हैं। उनके स्वयं के अन्तरङ्ग में शान्तरस का समुद्र उल्लसित हो रहा है। उस अनुभवपूर्वक धर्मात्मा सन्त जगत के समस्त जीवों को आमन्त्रण देते हैं कि **हे जगत के जीवों! आओ... आओ... यहाँ भगवान ज्ञान-समुद्र में शान्तरस उछल रहा है... उसमें मग्न होकर उसका अनुभव करो।**

भाई! दूधपाक, गुलाबजामुन इत्यादि का रस तो जड़ है, उसके अनुभव में तो अशान्ति है और वह तो अनन्तबार भोग ली गयी जूठन है; इसलिए उस जड़ के स्वाद की रुचि छोड़ो और इस चैतन्य के शान्तरस का आस्वाद लो। यह शान्तरस का समुद्र इतना अधिक उछला है कि सम्पूर्ण लोक को अपने में समा ले अर्थात् जान ले। इसलिए जगत के सभी जीव एक साथ आकर इस शान्तरस में निमग्न होओ... सभी जीव आओ... कोई बाकी न रहो...। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत को आमन्त्रण देकर वास्तव में तो धर्मात्मा सन्त शान्तरस में लीन होने की अपनी भावना को ही भाते हैं।

*( - सम्यग्दर्शन, भाग ३, पृष्ठ १९० )*

36

## धर्म के स्तम्भ : आचार्यदेव

अहो! महान सन्त-मुनिवरों ने जङ्गल में रहकर आत्मस्वभाव का अमृत बहाया है। आचार्यदेव धर्म के स्तम्भ हैं, जिन्होंने पवित्र धर्म को टिकाए रखा है, गजब का काम किया है। साधकदशा में स्वरूप की शान्ति का वेदन करते हुए परिषहों को जीतकर परम सत् को जीवन्त रखा है। आचार्यदेव के कथन में केवलज्ञान की झङ्कार आती है। महान शास्त्रों की रचना करके बहुत जीवों पर अमाप उपकार किया है। रचना तो देखो! पद-पद में कितना गम्भीर रहस्य भरा है! यह तो सत् की प्रसिद्धि है, इसकी समझ में तो मुक्तिरमा के वरण करने का श्रीफल है अर्थात् समझनेवाले को मोक्ष ही है।

*( - दृष्टि ना निधान, बोल १२१ )*

37

## कौन मुनिराज को नहीं मानेगा ?

**प्रश्न** – आप मुनि को मानते हैं ?

**उत्तर** – भाई ! आत्मज्ञानयुक्त सच्चे भावमुनिपने को कौन नहीं मानेगा ? वे तो पञ्च परमेष्ठी में साधु परमेष्ठी हैं, उनके तो हम दासानुदास हैं। कुछ लोग कहते हैं कि आप मुनि को नहीं मानते; परन्तु भाई ! तुम्हें मनवाने का क्या काम है ? अन्तर में सच्चा मुनिपना हो और दूसरे उसे न मानें तो क्या मुनिपना नष्ट हो जाता है ? और यदि अन्तर में सच्चा मुनिपना न हो और दूसरे मुनिपना मानें तो क्या सच्चा मुनिपना आ जाता है ? मुनिपना मनवाने आदि के विकल्प तो कहीं दूर रह गये, परन्तु मुनि को तो व्रतादि के शुभविकल्प आयें, वह भी कर्तव्य नहीं है, सहज है।

*( – वचनामृत प्रवचन, २/३५८ )*

38

## जिसे मुनिराज के प्रति बहुमान नहीं, वह मिथ्यादृष्टि

जैसे पिता को देखते ही पुत्र को हर्ष होता है; उसी प्रकार अपने धर्मपिता को देखते ही धर्मात्मा के मन में हर्ष होता है। जिसको स्वप्न में भी ऐसे दिगम्बर सन्त के दर्शन के प्रति अरुचि का भाव आता है, वह जीव पापी है। अरे! देवता भी जिनके चरणों में नमते हैं, कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसे महान सन्त भी जिनके लिये धन्य-धन्य कहते हैं - ऐसे दिगम्बर सन्त-मुनियों के प्रति जिस जीव को प्रमोद-भक्ति-बहुमान नहीं आता, वह जीव मिथ्यादृष्टि है। *( अष्टपाहुड़ प्रवचन, १८५ )*

39

## मानो परमात्मा का ही वन-विहार

अहो! मोक्षमार्गी निर्ग्रन्थ मुनिराज, काया के प्रति उदासीन वर्तते हुए स्वरूप में लीन होकर आनन्द में झूलते हैं। **जैसे वन में वनराज सिंह विचरण करता है, वैसे मुनिराज विचरण करते है; मानो परमात्मा ही वन-विहार कर रहे हों** - ऐसे मुनि भगवन्त, भव का अन्त करके सिद्धदशा प्राप्त कर लें — इसमें क्या आश्चर्य है? *( - वीतराग-विज्ञान, भाग ५, पृष्ठ ५५ )*

40

## बाघ-सिंह तो हमारे मित्र हैं

'जहाँ सिंह और बाघ गरजते हुए विचरण करते हों – ऐसे जङ्गल में मैं अकेले आत्मस्वरूप का ध्यान करूँगा... सिंह और बाघ शरीर को खा जाएँगे तो भी उसका विकल्प न हो और मैं निर्भय होकर अडोल आसन में बैठकर स्वरूप का ध्यान करूँगा। अरे! मैं तो चैतन्यगुफा में विश्रान्त अरूपी आनन्दकन्द भगवान आत्मा हूँ... मुझे कौन खाएगा? यदि बाघ आकर शरीर को खा जाएँ तो भी हमें शरीर से ममत्व नहीं है; हम तो उसे छोड़ना ही चाहते हैं और उसे वह ले जा रहा है... इस प्रकार वह तो हमारा मित्र ही है।'

— यह मुनियों की वीतरागता समझाने के लिए किया गया कथन है, लेकिन मुनियों को ध्यान में ऐसे विकल्प नहीं होते, उन्हें तो चैतन्य की लीनता में देह-सम्बन्धी विकल्प भी नहीं होते।

*( – महामहोत्सव प्रवचन, पृष्ठ ३४ )*

41

## अहो! मानो सिद्धभगवान ऊपर से उतरे हैं!!

आठ-आठ वर्ष के राजकुमारों को आत्मभानसहित वैराग्य होने पर जब आनन्द में लीनता की भावना होती है, तब वे माता के पास जाकर जिनदीक्षा के लिए आज्ञा माँगते हैं - 'हे माता! मैं अब आत्मा के परम आनन्द को साधने के लिए जाता हूँ; हे माता! मैं अब सुखी होने के लिए जाता हूँ।' माता की आँखों में से आँसुओं की धारा बहती है, लेकिन पुत्र के रोम-रोम में वैराग्य समाहित है। वे कहते हैं 'अरे माता! जननीरूप में तू मुझे सुखी करना चाहती है तो मैं अपने सुख की साधना के लिए जा रहा हूँ, तू मेरे सुख में विघ्न मत कर। माँ, निज आत्मा के आनन्द को साधने के लिए मैं जा रहा हूँ, उसमें तू दुःखी होकर विघ्न मत कर। हे जननी! मुझे आज्ञा दे।'

माता भी धर्मात्मा है, वह पुत्र से कहती है - 'हे बेटा! मैं तेरे सुख के पथ में विघ्न नहीं करूँगी। तेरे सुख का जो पन्थ है, वही हमारा पन्थ है।' माता की आँख में तो आँसुओं की धारा बहती है और वह वैराग्य से कहती है। 'हे पुत्र! तू आत्मा के परम आनन्द में लीनता करने के लिए जाता है तो मैं तेरे सुख के पन्थ

में विघ्न नहीं करूँगी... मैं तूझे नहीं रोकूँगी... तेरा आत्मा मुनि होकर आत्मा के परम आनन्द को साधने के लिए तैयार हुआ है, इसमें हमारा अनुमोदन है। बेटा! तू आत्मा के निर्विकल्प आनन्दरस को पी! हमें भी यही करने जैसा है।'

इस प्रकार वह वैरागी माता अपने पुत्र को जिनदीक्षा की अनुमति प्रदान करती है। अहा! जब आठ वर्ष का सुन्दर राजकुमार वैराग्य से इस प्रकार माता के समीप दीक्षा की अनुमति लेता होगा और माता वैराग्यपूर्वक उसे सुख के पन्थ में विचरण करने की आज्ञा देती होगी, वह प्रसङ्ग कैसा होगा! तत्पश्चात् वह छोटा सा राजकुमार जब दीक्षा लेकर मुनि होता है, एक हाथ में छोटा-सा कमण्डल और दूसरे हाथ में मोर-पिच्छी लेकर निकलता है, तब तो **अहा! मानो छोटे-से सिद्ध भगवान ऊपर से उतरे हैं।**

*( - आत्मधर्म ( गुजराती ), अङ्क ३१२, पृष्ठ ३० )*

42

## तीर्थङ्करों के शासन को जीवन्त रखनेवाले सन्त

अहा! वे दृश्य कैसे होंगे। जब कुन्दकुन्दस्वामी और अमृतचन्द्रस्वामी जैसे धर्म धुरन्धर दिगम्बर सन्त हाथ में कमण्डल और मोरपिच्छी लेकर इस भरतभूमि में विचरते होंगे और ऐसा आत्मवैभव जगत के जीवों को दिखाते होंगे! **ये वीतरागमार्गी सन्त तो मानो सिद्धपद को साथ ही लेकर घूमते थे...** इनकी परिणति अन्तर्मुख होकर प्रतिक्षण सिद्धपद से मिलती थी। ऐसे मुनियों ने तीर्थङ्करदेवों का शासन टिकाया है।

*( - आत्मवैभव ( गुजराती ), पृष्ठ ४०९ )*

43

## भावलिङ्गी मुनि अर्थात् चलते-फिरते परमेश्वर

**अहो! भावलिङ्गी मुनि अर्थात् चलते-फिरते परमेश्वर!** जो भीतर आनन्द के झूले में झूलते हों और पञ्च महाव्रत का राग उठे, उसे विष मानते हों, अहा! जिनके दर्शन बड़े भाग्य से प्राप्त होते हों, जो आनन्द की खेती कर रहे हों **... वह धन्य दशा अलौकिक है। गणधरों का नमस्कार जिसे पहुँचता हो, उस दशा की क्या बात!**

*( - द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, १११३, पृष्ठ २४० )*

44

**भ्रम-रोग-हर जिनके वचन, मुखचन्द्र तें अमृत झरें**

अहो! मुनिराज के वचन भी जिनवचन हैं, वे आत्मा को जगाकर परम शान्तरस का अनुभव करानेवाले हैं और भवरोग दूर करनेवाली औषधि है। यहाँ छहढाला में मुनिराज के वचनों को **भ्रमरोग का हरण करनेवाले** कहा है। श्रीमद् राजचन्द्रजी ने भी उन्हें **भवरोग की औषधि** कहा है। जिनवचन आत्मभ्रान्तिरूपी महारोग को दूर करनेवाली अमोघ औषधि हैं।

**अन्तर में वीतरागी आनन्द में झूलनेवाले मुनिराज जब बोलते हैं तो ऐसा लगता है कि उनके मुख से आनन्द झर रहा हो।** मुनियों की वाणी मीठी होती है, उसमें कटुता नहीं होती। मुनिराज चाहे जैसी, तुच्छ भाषा नहीं बोलते; उनकी भाषा तो शान्तरसमयी, गम्भीर प्रयोजनगर्भित होती है। उसे सुनते ही संशय मिट जाता है, विषयों का रस छूट जाता है और जीव चैतन्यरस का अमृतपान करके तृप्त हो जाता है। जिस प्रकार चन्द्रमा में से शीतल अमृत झरता है, उसी प्रकार मुनिराज के मुखरूपी चन्द्रमा में से परम शान्तरस का अमृत झरता है, जिससे भव का क्लेश मिट जाता है।

*( - वीतराग-विज्ञान, भाग ६, पृष्ठ १२-१३ )*

45

## वाह! देखो, सन्तों की वाणी का रणकार!

अहाहा! मुनियों के 'जग सुहित कर' मधुर वचन बड़े भाग्य से सुनने को मिलते हैं। उनके श्रीमुख से चैतन्यस्वभाव को प्रकट करनेवाली वीतरागवाणी सुनकर समझने से जीवों का कल्याण होता है, उन्हें सम्यग्दर्शनादि उत्पन्न होते हैं। ऋषभदेव के जीव को भोगभूमि में, भगवान महावीर के जीव को सिंह के भव में और भगवान पारसनाथ के जीव को हाथी के भव में मुनिराज का मधुर उपदेश सुनकर उसी समय सम्यग्दर्शन हो गया था।

आत्मा को सुखदायक उपदेश देते हुए मुनिराज कहते हैं – 'अहो जीवों! तुम्हारा आत्मा इस देह से भिन्न है। ये राग-द्वेष, क्रोध-मानादि दुःखदायक भाव भी तुम्हारा स्वरूप नहीं है। तुम तो अपने आत्मा का लक्ष्य करके उसमें लीन हो जाओ तो तुम्हारा परमात्मपना तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव में आएगा और दूसरों से सुख माँगने की दीनता छूट जाएगी।

आत्मा स्वयं परमात्मसुख का भण्डार है, वह विषयों से सुख की भीख माँगे – यह उसे शोभा नहीं देता। प्रभु! तू दीन और भिखारी नहीं, भगवान है; भगवान

को भीख माँगना शोभा नहीं देता। धन के ढेर और पञ्चेन्द्रिय विषयों में सुख नहीं है, तू स्वयं सुख का भण्डार है। धन का अभाव दु:ख का कारण नहीं है, परन्तु अपने को धन के अभाव से दु:खी माननेरूप दीनता अर्थात् भिखारीपना दु:ख का कारण है। भगवन्! तू दीन नहीं है, तू तो अनन्त गुणों को भण्डार परमेश्वर है; अन्दर में नजर कर, तू निहाल हो जाएगा।

वाह! देखो तो जरा सन्तों की वाणी की रणकार! यह वाणी आत्मा को जगाकर खड़ा कर देती है, उसे हित के मार्ग पर लगानेवाली है। इसे सुनते ही आत्मा आनन्दित होकर उल्लसित हो जाता है। 'अहो! मेरा स्वरूप इतना अद्भुत है' – इस प्रकार आश्चर्यचकित होकर अन्तर्मुख हो जाता है और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है, ऐसी अपूर्व हितकारी वाणी मुनिवरों के श्रीमुख से झरती है।

*( – वीतराग-विज्ञान, भाग ६, पृष्ठ १५-१६ )*

46

## मुनिराज, पौद्गलिक आहार में मूर्च्छित क्यों नहीं होते ?

जैन मुनि, कुलवान श्रावक के घर विधिपूर्वक आहार लेते हैं। वे बिना विधि के जैसे तैसे चाहे जिसके यहाँ आहार नहीं लेते। वे अपने हाथ में, शोधकर तथा छयालीस दोषरहित आहार लेते हैं। रस की गृद्धता छोड़कर किसी न किसी रस का त्याग करते हैं। मात्र संयम की रक्षा के प्रयोजन से आहार लेते हैं। **अहा हा! अन्दर में चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द का निरन्तर भोजन करनेवाले मुनिराज, पौद्गलिक आहार में मूर्च्छित कैसे हो सकते हैं ?**

मुनिराज को आहार लेते समय उसमें यदि किसी जीव-जन्तु की हिंसा की शङ्का पड़ जाए या बाल जैसी अशुद्ध वस्तु आहार में दिख जाए तो वे आहार करना छोड़ देते हैं, चाहे गत एक-दो दिनों का उपवास ही क्यों न हो ? जरा-सा दोषयुक्त आहार लेने से क्या बिगड़ता है ? - ऐसे विचार से शिथिल होकर आहार नहीं लेते और आहार छोड़ देने पर अपने परिणामों में क्लेश नहीं करते। वे आहार सम्बन्धी विचार छोड़कर ज्ञान-ध्यान-स्वाध्याय में उपयोग जोड़ देते हैं।

*( - वीतराग-विज्ञान, भाग ६, पृष्ठ १८ )*

47

## मुनिदशा : वीरों का मार्ग, कायरों का नहीं

देखो, यह जैन साधुओं का आचरण! मोक्षमार्गी मुनिवरों की क्रिया! गृहस्थ श्रावक द्वारा अपने लिए बनाये गये आहार में से ही मुनिराज आहार ग्रहण करते हैं। यदि उनके लिए आहार बनाया गया हो या आहार बनाने में कोई हिंसारूप आरम्भ-समारम्भ किया हो तो ऐसा उद्दिष्ट या अध:कर्मी आहार मुनिराज कदापि नहीं लेते। यदि शिथिल होकर ऐसा आहार ग्रहण करें तो एषणा समिति या अहिंसा महाव्रत नहीं रहता अर्थात् मुनिपना ही नहीं रहता। **भाई! जैन मुनियों का आचरण बहुत ऊँचा होता है।** यह तो बाह्य स्थूल आचरण है, उनके अन्तरङ्ग स्वानुभवरूप वीतरागी आचरण की तो बात ही क्या कहना? **मुनिदशा तो पञ्च परमेष्ठी पद में हैं - उनके आचरण में ढीलापन नहीं होता। यह तो वीरों का मार्ग है, यहाँ कायरों का काम नहीं है।**

*( - वीतराग-विज्ञान, भाग ६, पृष्ठ १८-१९ )*

48

## मुनिराजों से जैनशासन की शोभा!

मुनिराज निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहते हैं। वे कभी-कभी पिछली रात्रि में थोड़ी निद्रा लेते हैं, उन्हें विशेष प्रमाद नहीं होता। **अहा, जिनका आत्मा चैतन्य की साधना में अत्यन्त जागृत है, उन्हें नींद लेना कैसे सुहाएगा? जागृत रहकर सिद्धपद को साधनेवाले मुनिराजों से जैनशासन की शोभा है।** उनका समावेश 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में होता है।

*( - वीतराग-विज्ञान, भाग ६, पृष्ठ २८ )*

49

## वीतरागी सन्तों की गर्जना!

वीतरागी मोक्षमार्ग की गर्जना करते हुए सन्त कहते हैं कि अरे राग को धर्म माननेवाले कायरों! तुम चैतन्य के वीतरागमार्ग में नहीं चढ़ सकते... तुम चैतन्य को साधने का स्वाधीन पुरुषार्थ नहीं प्रगटा सकते। स्वाधीन चैतन्य का तुम्हारा पुरुषार्थ कहाँ गया? तुम धर्म करने निकले हो तो चैतन्य शक्ति की वीरता प्रगट करो। इस वीतरागी वीरता द्वारा ही मोक्षमार्ग सधेगा। **अरे! वीतरागी सन्तों की ऐसी गर्जना सुनकर कौन नहीं जागेगा?**

*( - सम्यग्दर्शन, भाग ६, पृष्ठ ७४ )*

50

**पञ्चम काल में तीर्थङ्कर से भेंट : अद्‌भुत पात्रता....**

यह कुन्दकुन्द भगवान की वाणी है, जिनकी इस पञ्चम काल में साक्षात् तीर्थङ्कर भगवान सीमन्धरनाथ से भेंट हुई है। **अहो! इस पञ्चम काल में भरतक्षेत्र के जीव को अन्य क्षेत्र के तीर्थङ्कर का सदेह, साक्षात् मिलना हो, वह कैसी पात्रता! और भरतक्षेत्र के जीवों का भी कैसा भाग्य!!** चैतन्य की महिमा का घोलन करते-करते यथार्थ निर्णय लेकर स्व-संवेदन में भी ऐसा ही आता है कि अहो! मेरी वस्तु ही परिपूर्ण है, तब वह जीव पूर्णता के पन्थ में गतिमान हुआ। उसे अपने परमात्मा से भेंट हुई और वह वीर होकर वीर के मार्ग में सम्मिलित हुआ। यह है महावीर का सन्देश, जिसे सन्तों ने झेला और अन्तर में साधा।

*( - आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष २१, अङ्क २४१, पृ. १२ )*

51

## मुनि तो भगवान हैं, उन्हें कौन नहीं मानेगा ?

**प्रश्न** – आपकी बात तो सत्य है, परन्तु आप मुनियों को तो मानते नहीं ? – ऐसा लोग कहते हैं।

**उत्तर** – अरे भाई! हम प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही सर्व मुनिवरों को नमस्कार करते हैं, **णमो लोए सव्वसाहूणं** कहकर उन्हें नमस्कार किया जाता है। **अहो! मुनिदशा तो अलौकिक परमेष्ठी पद है, मुनि तो भगवान हैं, उन्हें कौन नहीं मानेगा ?** परन्तु मुनिदशा जिसे हो, उसे ही तो मुनि माना जाएगा ? मुनिदशा क्या है, यह भी बहुत लोगों को पता नहीं है। जिसे मुनिदशा न हो, श्रद्धा भी सच्ची न हो, मुनि के योग्य आचरण भी न हो, ऐसे को मुनि मान लेने से तो सच्चे मुनिभगवन्तों का अनादर होता है। **हम मुनि को परम आदर से मानते हैं, परन्तु मुनि होना चाहिए न!**

जिसे अन्दर में आत्मा का भान हो और बाहर में बहुत लीनतारूप चारित्रदशा में आत्मा के परमआनन्द के घूँट पीते हों तथा अत्यन्त दिगम्बर दशा हो, **ऐसे मुनि तो भगवान हैं।** ऐसे मुनि के दर्शन दुर्लभ हैं, परन्तु इससे कहीं कैसे भी विपरीत स्वरूपवाले को मुनि नहीं मान लिया जाएगा। यह तो वीतरागता का मार्ग है,

इसमें गड़बड़ नहीं चल सकती। यह तो अपने हित के लिए सच्चा निर्णय करने की बात है। जिसे भवदुःख से छूटना हो और आत्मा का मोक्षसुख अनुभवना हो, उसके लिए यह बात है।

*( - आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष २८, अङ्क ३२७, पृ. २-३ )*

52

## अहो! जगत का महाभाग्य

अहो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव की क्या बात करें! कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो भगवान कहलाते हैं! उनका वचन अर्थात् केवली का वचन। अन्तर में अध्यात्म का स्रोत उमड़ रहा था, एकदम केवलज्ञान की तैयारी थी; वीतरागभाव से अन्तर में स्थिर होते-होते फिर छद्मस्थदशा में रह गये और विकल्प उठने से महान शास्त्रों की रचना हो गयी। इतना जगत का महाभाग्य था कि उनके द्वारा इन समयसार, प्रवचनसार जैसे महान परमागमों की रचना हो गई। इस समय तो वैसी शक्ति यहाँ नहीं है। सौराष्ट्र का भी महाभाग्य है कि गुजराती भाषा में वे शास्त्र प्रकाशित हो गये हैं।

*( भेदविज्ञानसार, पृष्ठ १७२-१७३ )*

53

## जगत् से न्यारा सन्तों का मार्ग

अहो! आत्मा की आराधना का पन्थ राग से न्यारा है। वीतरागी सन्तों का मार्ग दुनिया से एकदम अलग है, दुनिया से दूर अर्थात् जगत् से पृथक् अन्दर के स्वभाव में गहरे घुस जाएँ, तब वीतरागी सन्तों के मार्ग की आराधना प्राप्त होती है। जिसे आनन्दस्वरूप आत्मा को साधना हो, उसे बाहर के पुण्य-पाप के भाव का रस उड़ जाता है। राग का रस भी रहे और आत्मा का आनन्द भी सधे, एकसाथ ऐसी दो बातें नहीं होतीं, क्योंकि आत्मा के आनन्द की बात राग से अत्यन्त पृथक् है।

**जहाँ राग का प्रेम है, वहाँ चैतन्य की आराधना नहीं** - ऐसा जानकर, हे जीव! राग और आत्मा की भिन्नता के अनुभव द्वारा भावशुद्धि प्रगट कर। भावशुद्धि ही आराधना है, वही मोक्ष का कारण है। उसके द्वारा कल्याण की परम्परा प्राप्त होती है, मोक्षसुख प्राप्त होता है।

*( - आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष २८, अङ्क ३३६, पृष्ठ ३० )*

54

## वीतरागी सन्तों द्वारा वीतरागता का ही उपदेश

मुनि इत्यादि गुरु वीतरागता को साधते हैं और बारम्बार वीतरागता का उपदेश देते हैं, स्वयं जिसे साधते हैं, उसी का उपदेश देते हैं और वे ही गुरुपद में शोभित होते हैं। जो राग की पुष्टि का उपदेश दे, वह गुरुपद में नहीं शोभता, वह तो कुगुरु है। वीतरागता के साधक गुरु तो बारम्बार ऐसा उपदेश देते हैं कि तेरा स्वभाव वीतरागी है, वीतरागभाव ही तेरा धर्म है, वीतरागभाव ही मोक्ष का साधन है, वीतरागभाव में ही सुख है, शुद्धात्मा के आश्रय से वीतरागभाव ही कर्त्तव्य है; इस प्रकार बारम्बार वीतरागता का पोषक उपदेश देते हैं।

*( – आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष २८, अङ्क ३२५, पृष्ठ १३ )*

55

## मुनिवरों के हम दासानुदास हैं...

अहो! मुनिवर तो आत्मा के परम आनन्द में झूलते-झूलते मोक्ष की साधना कर रहे हैं। आत्मा के अनुभवपूर्वक दिगम्बर चारित्रदशा द्वारा मोक्ष की सिद्धि होती है। **दिगम्बर साधु अर्थात् साक्षात् मुक्ति का मार्ग। अहो! ये तो छोटे सिद्ध हैं!** अन्तर चिदानन्दस्वरूप में झूलते-झूलते बारम्बार शुद्धोपयोग द्वारा निर्विकल्प आनन्द का अनुभव करते हैं। पञ्च परमेष्ठी की पंक्ति में जिनका स्थान है, ऐसे मुनिराज की महिमा की क्या बात? **ऐसे मुनिराज के दर्शन हों तो भी महान आनन्द की बात है। ऐसे मुनिवरों के तो हम दासानुदास हैं। हम उनके चरणाविन्द को नमन करते हैं। धन्य मुनिदशा! हम भी इस दशा की भावना भाते हैं।**

*( - गुरुदेवश्री के वचनामृत, १४२, पृष्ठ ९० )*

56

## आचार्यदेव ने तीर्थङ्करों का विरह भुला दिया

अहा! जिस ज्ञान ने अनन्त सर्वज्ञ अपने में समाहित किये, उस ज्ञान की महत्ता कितनी? वाह! कुन्दकुन्दाचार्यदेव पौन्नूर जैसे वन-पर्वत पर बैठे-बैठे अनन्त तीर्थङ्करों को लक्ष्य में लेकर, चैतन्य के अध्यात्मरस में कलम डुबो-डुबोकर इन शास्त्रों की रचना करते होंगे, उस समय की कैसी स्थिति होगी?

**मङ्गलं भगवान वीरो** और **मङ्गलं गौतमो गणी** - इन तीर्थङ्कर और गणधर के पश्चात् तुरन्त ही माङ्गलिक में जिनका नाम आया, उनकी महिमा की क्या बात? उन्होंने तीर्थङ्करों के विरह में इस भरतक्षेत्र में जैनशासन को टिकाए रखा है। अरे! आचार्यपद में रहकर तीर्थङ्कर जैसा काम किया है।

*( - आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष २१, अङ्क २४४, पृष्ठ ६ )*

57

## क्या आप मुनि को मानते हो ?.....

क्या आप मुनि को मानते हो ?..... हाँ!

**अहो! मुनि तो साक्षात् मोक्षमार्ग हैं। उनकी महिमा की क्या बात ? ऐसे ०८ करोड़ ९९ लाख ९९ हजार ९९७ अर्थात् तीन कम नौ करोड़ मुनि भगवन्त इस मनुष्य लोक में वर्तते हैं। हम उन सर्व मुनि भगवन्तों को परम भक्ति से मानते हैं, नमस्कार करते हैं और उस पद की भावना करते हैं।** तदुपरान्त श्री कुन्दकुन्दाचार्य आदि अनेक मुनि पूर्व में हुए हैं और भविष्य में होंगे, उन सबको भी हम स्मरण करके नमस्कार करते हैं।

*( - आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष ३०, अङ्क ३५९, पृष्ठ ०८ )*

58

## मुनिराज के एक-एक वाक्य में अनन्त आगम

मुनि की क्या बात! जो उपशमरस के ढाले में ढल गये हों, शान्त... शान्त... शान्त... हो गये हों, जिन्हें पुण्य-पाप के विकल्प का कोलाहल भी छूट गया हो, पवित्र चारित्रवाले हों, जिनके एक-एक वाक्य में अनन्त आगम भरे हों, जो जीवों को तृप्ति और शान्ति प्रदान करते हों - ऐसे मुनि के वाक्य के आधार पर इस ग्रन्थ की टीका रची गयी है।

*( - इष्टोपदेश प्रवचन, पृष्ठ २७१ )*

59

## अरे! मुनिराजों को सम्मान का भाव नहीं...

आहाहा! यह तो सन्तों की वीतरागवाणी है। सर्वज्ञ भगवान के अनुसार वाणी निकलती है। मैं यह टीका लिखूँ; इसे दुनिया मानेगी या नहीं, इसकी कोई परवाह नहीं है; हम तो जो सत्य है, उसे प्रसिद्ध करते हैं। अभी इस जाति का विकल्प उत्पन्न है, परन्तु हमें विकल्प का फल आवे – ऐसी भावना नहीं है कि दुनिया प्रशंसा करे कि वाह! अद्‌भुत टीका है। विस्तार बहुत सुन्दर किया... परन्तु भाई! वह कोई वस्तु नहीं है, वह सब तो परवस्तु है। भाषा और भाषा का सम्मान, यह भाव भगवान आत्मा का स्पर्श ही नहीं करता। यह सब बाह्य है, भगवान अन्दर में विराजमान है।

*( कलशामृत, भाग १, पृष्ठ २६ )*

60

## मुनिदशा का क्या कहना – वह तो केवलज्ञान की तलहटी

अहाहा! मुनिदशा कैसी होती है? – किसे कहते हैं मुनिदशा! मुनि तो छठवें–सातवें गुणस्थान में झूलते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन, वह उनका वेश है, उनके अन्तर में अनन्त गुण–पर्यायों का परिग्रह होता है। जिसे आत्मा के ज्ञान, सुख आदि अनन्त गुण और सम्यग्दर्शनादि अनन्त पर्यायों का अपने अनुभव में परिग्रह होता है, उसे मुनिदशा कहते हैं। परि अर्थात् समस्त प्रकार से, ग्रह अर्थात् पकड़ना। जिसने समस्त प्रकार से अन्तर में अपने ज्ञानादि गुणों तथा निर्मल वीतरागी पर्यायों को पकड़ा है, वैसी सहजदशारूप जिसे परिणमन हुआ है, उसे मुनिदशा कहते हैं।

अहा! मुनिदशा का क्या कहना? वह तो केवलज्ञान की तलहटी है। मुनि को अन्तर में आनन्दादि अनन्त गुणों और उनकी अनन्त शुद्ध निर्मलपर्यायों का अर्थात् प्रचुर अतीन्द्रिय स्वसंवेदन का परिग्रह होता है; अधिकांश विभाव छूट गया होता है। छठवें गुणस्थान में संज्वलन कषाय का एक अंश जरा होता है, परन्तु बहुत विभाव अर्थात् अनन्तानुबन्धी आदि तीन कषायों का विभाव

छूट गया होता है। महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प का मन्दराग-शुभराग रह गया होता है - ऐसी अन्तरङ्ग सहजदशा को निर्ग्रन्थ मुनिदशा कहते हैं।

*( वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ १८४ )*

61

## सर्वज्ञ के प्रतिनिधि वीतरागी सन्त

सन्त तो सर्वज्ञ के प्रतिनिधि हैं, वे जगत को सर्वज्ञ का सन्देश सुनाते हैं। अरे जीवों! प्रतीति तो करो कि तुम्हारे में ऐसा सर्वज्ञपद भरा है...। तुम जगत के पदार्थरहित ही स्वयं अपने स्वभाव से परिपूर्ण हो, मुझे अमुक वस्तु के बिना नहीं चलता - ऐसा तुमने पराधीन-दृष्टि से माना है और इसी कारण पराश्रय से संसार में परिभ्रमण कर रहे हो। वस्तुतः तो तुम्हारा आत्मा पर के बिना ही अर्थात् पर के अभाव से ही, पर की नास्ति से ही स्वयं अपने से टिका हुआ है। प्रत्येक तत्त्व अपनी अस्ति से और पर की नास्ति से ही टिका हुआ है।

*( - आत्मधर्म ( गुजराती ), अङ्क ३०५, पृष्ठ ७ )*

62

## देखो, ऐसे होते हैं हमारे जैनमुनि!

मुनिराज को वीतरागता फली-फूली है; जिस प्रकार फूल की कली खिल उठती है, उसी प्रकार वीतरागता खिल उठी है।

श्रेणिक राजा ने यशोधर मुनि के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया था; करोड़ों चींटियाँ शरीर पर चढ़ गईं और जगह-जगह काटा - ऐसे उपसर्ग के समय भी वे मुनिराज खेदखिन्न नहीं हुए थे, परन्तु अन्तर में वीतरागी आनन्द में क्रीड़ा करते थे।

चेलना रानी कहने लगी - देखो, ऐसे होते हैं हमारे जैन मुनि! अन्तर-आनन्द की मस्ती में उपसर्ग के प्रति उनका लक्ष्य ही नहीं जाता। अन्तर में एकदम अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति में लीन हो गये हैं।

तब श्रेणिक राजा को लगा कि अहो! ऐसा है जैनधर्म? फिर मुनिराज ने धर्म का स्वरूप समझाया और श्रेणिक ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, पश्चात् महावीर भगवान के समवसरण में तीर्थङ्कर-नामकर्म का बन्ध किया; मुनि को उपसर्ग करते समय उन्होंने सातवें नरक की आयु का बन्ध किया था, उसमें सम्यग्दर्शन के प्रताप से परिवर्तन होकर तेतीस सागर की स्थिति घटकर प्रथम

नरक में चौरासी हजार वर्ष की रह गई! वर्तमान में वे पहले नरक में हैं, वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी के प्रथम महापद्म नामक तीर्थङ्कर होंगे।

अहा! सम्यक्त्व की महिमा अपार है! लोगों को उसकी खबर नहीं है, मूल्य नहीं है और बाह्य क्रियाओं में 'यह किया, वह किया' इस प्रकार मिथ्यात्व का पोषण करते हैं। यहाँ तो कहते हैं कि मुनिराज को प्रतिकूलता में खेद और अनुकूलता में हर्ष नहीं है।

*( वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ २५२ )*

63

## मुनिराज और केवली भगवान में समानता

धर्मी श्रावक, मुनिराज की अद्‌भुत दशा को पहचानते हैं, उन्होंने स्वयं भी मुनियों जैसी वीतरागी शान्ति का स्वाद चखा है। मुनियों की तो क्या बात कहें? उन्हें मात्र संज्वलन कषाय शेष रह गई है, इसके अलावा तो वीतरागता ही है। **वे केवलज्ञान के बिलकुल समीप पहुँच गये हैं, संसार के कोलाहल से दूर चैतन्य की शान्ति में ठहरकर बर्फ जैसे हो गये हैं। वाह मुनिराज! आपमें और केवली भगवान में क्या अन्तर है?**

*( - वीतराग-विज्ञान, भाग ६, पृष्ठ ३१ )*

64

## मुनिपने की भावना रखना

जिसे आत्मज्ञान के उपरान्त अन्दर में वीतरागी चारित्र हो, उसे ही मुनिपना होता है, आत्मज्ञान के बिना मुनिपना नहीं होता।

'आत्मज्ञान वहाँ मुनिपना' – ऐसा श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है, परन्तु उसमें ऐसा आशय समझना चाहिए कि आत्मज्ञान के बिना मुनिपना नहीं होता। गृहस्थ को आत्मज्ञान होता है, परन्तु मुनिदशा नहीं होती। घर में बैठा हो और छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलता हो – ऐसा नहीं होता। जो आत्मा की वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान-रमणता को नहीं आचरता है, वह जीव चार गति में दुःख भोगता हुआ संसार में परिभ्रमण करता है।

चैतन्य के भानसहित चारित्रदशा के बिना मोक्ष नहीं होता। सम्यग्दर्शन के बाद ही अन्दर में लीन होकर जो विरक्तदशा प्रगट होती है, उसे एक-दो भव में मुक्ति हो जाती है। शक्ति न हो तो मुनिदशा की भावना रखना, परन्तु मुनिपने का स्वरूप विपरीत नहीं मानना।

*( – कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन, पृष्ठ १८१-१८२ )*

65

## साधु बनना सरल, लेकिन साधु होना कठिन

मुनि की दशा निराली है! उसका क्या कहना! आत्मा के अन्तर में अनन्त-अनन्त गुण हैं, उसमें दृष्टि चली गई और लीनता बढ़ गई - ऐसा प्रचुर स्वसंवेदन-भाव, वह मुनि का चिह्न है। राग, विकल्प और पञ्च महाव्रत, वह कहीं मुनिपना नहीं है। कहते हैं न! कि साधु 'बनना' सरल है, परन्तु साधु 'होना' कठिन है। कपड़े उतारकर नग्न हो गए, क्रियाकाण्ड और व्रत ले लिए, बाहर से साधु 'बन' गए, परन्तु वास्तव में साधु 'होना' - साधुभावरूप परिणमना कठिन है।

अरे भाई! साधु होना यानि क्या? अरे! इस काल में जहाँ सम्यग्दर्शन वस्तु दुर्लभ हो गई, वहाँ साधुपना तो भाई! कोई अलौकिक वस्तु है! मुनिराज को अतीन्द्रिय आनन्द में रमते हुए बाहर का विकल्प आए तो वह बोझ लगता है। पञ्च महाव्रत का विकल्प आए, शिष्य को पढ़ाने का विकल्प आए या प्रवचन का विकल्प उठे; तब भी बोझ लगता है। अहा प्रभु! निर्विकल्प आनन्द के समक्ष विकल्प तो बोझ लगता है। अरे! सम्यग्दृष्टि को भी क्षायिक सम्यक्त्व हो, तथापि स्त्री सम्बन्धी विषय-वासना का विकल्प आता है,

परन्तु वह बोझ-दु:ख लगता है। वे विकल्प नहीं टूटते जानकर दु:खरूप लगते हैं।

*( वचनामृत-प्रवचन, पृष्ठ ३१९ )*

66

## मोक्षमार्ग के प्रणेता हम यह खड़े हैं.....

मुनिराज स्वयं साक्षात् मोक्षमार्ग हैं। '**मोक्षमार्ग के प्रणेता हम यह खड़े हैं।**' हम अनुभव करके कह रहे हैं कि ऐसा ही मुनिमार्ग होता है। छठवें-सातवें गुणस्थान में बारम्बार झूलते हुए शुद्धोपयोगरूप का अनुभव करके कह रहे हैं कि मोक्षमार्ग के प्रणेता हम यह खड़े हैं। मुनिराज ने परमेश्वर की विद्या को प्राप्त करके अत्यन्त मध्यस्थ होकर सर्व पुरुषार्थ में सारभूत होने से जो आत्मा को अत्यन्त हितरूप है - ऐसी मोक्षलक्ष्मी को ही निरन्तर उपादेयरूप निर्णय किया है।

*( दिव्यध्वनिसार भाग 2, पृ०-320-321 )*

67

## अपने आँगन में मुनिराज का आगमन – श्रावकों का सौभाग्य

छठवें–सातवें गुणस्थान की भूमिका में झूलते हुए मुनिराज के पधारने पर श्रावकों को ऐसा उल्लास आता है कि अहो! हमारे आँगन में कल्पवृक्ष आया; इस प्रकार उस प्रसङ्ग में उनका उल्लास बढ़ जाता है। अज्ञानी तर्क करता है कि तुम तो परद्रव्य से लाभ नहीं होना कहते हो तो फिर गुरु का बहुमान क्यों करते हो?

भाई! तू भूमिका को समझता ही नहीं; भूमिकानुसार राग आता है, तथापि श्रावक उस राग को धर्म नहीं मानता। उस समय शुभराग आता है। यदि कोई यह कहे कि शुभराग आता ही नहीं तो यह बात मिथ्या है परन्तु उस शुभराग को धर्म नहीं कहते।

*( पञ्चास्तिकाय प्रवचन, गाथा १५९, पृष्ठ १७० )*

(68)

## मुखचन्द्र तैं अमृत झरें

अहाहा! इसमें तो श्रीगुरु-जैन के गुरु-दिगम्बर सन्त-निर्ग्रन्थ गुरु कैसा उपदेश देते हैं? यह भी आ जाता है। इसका अर्थ ऐसा है कि जैन के गुरु उसे कहते हैं कि जो ऐसा उपदेश देवें कि राग से आत्मा भिन्न है; राग से आत्मा को किञ्चित् भी लाभ या धर्म नहीं होता। जो राग से धर्म होना कहे, वह सच्चा जैनगुरु नहीं; अज्ञानी-कुगुरु है। दिगम्बर निर्ग्रन्थ गुरु तो अज्ञानी को रागादि परभाव से विवेक कराते हैं कि भगवान! पुण्य-पाप का जो भाव उत्पन्न होता है, वह आत्मा की चीज नहीं है, वह तो आत्मा का घात करनेवाली चीज है।

*( प्रवचनरत्नाकर, भाग २, पृष्ठ १७८ )*

69

## हमें भगवान का विरह नहीं

अहाहा! देखो, यह दिगम्बर सन्तों के अन्तर के आनन्द की मस्ती! यह पञ्चम काल के मुनिराज पुकार करके बहुत ऊँचे से कहते हैं कि हजारों वर्ष से बाहर में भगवान का विरह होने पर भी हमारा अन्तरङ्ग निर्मलानन्द का नाथ चैतन्य भगवान हमें समीप वर्तता है। कोई पूछे कि भगवान केवली के पास आप गये थे? तो कहते हैं – भाई! सुन, मेरा नाथ भगवान आत्मा चैतन्यप्रभु है, उसके पास हम गये हैं। वहाँ से अन्तर में आवाज आती है कि विकल्पों को हमने ऐसा वमन कर दिया है कि अब वे फिर से उत्पन्न होनेवाले नहीं है। अहाहा...! वस्तु परमपारिणामिक स्वभावरूप जो त्रिकाली ध्रुव है, उसके सन्मुख होने पर जो स्वानुभव प्रगट हुआ है, वह मोक्ष लेकर ही पूर्ण होगा; अब फिर से मिथ्यात्व होगा – ऐसी बात है ही नहीं।

*( प्रवचनरत्नाकर, भाग ४, पृष्ठ ६८ )*

70

## इस दशा के बिना मुक्ति नहीं

**प्रश्न** – मुनिदशा कैसी होती है ?

**उत्तर** – मुनिराज निर्मल विज्ञानघन में निमग्न हैं। अहा! कैसी भाषा का प्रयोग किया है! साधुपना कोई अलग ही है भाई! विज्ञानघन निज भगवान आत्मा में वे अन्तर्निमग्न हैं। निमग्नपना पर्याय है, परन्तु वह त्रैकालिक एकाकार विज्ञानघनस्वभाव में निमग्न है, डूबी हुई है। अहा! उस दशा के बिना मुक्ति नहीं है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण चतुर्थ गुणस्थान में होते हैं, परन्तु इतने से ही सम्पूर्ण मुक्ति नहीं होती। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप निर्ग्रन्थ चारित्रदशा से मुक्ति प्राप्त होती है। बाह्य में वेश धारण कर ले, नग्नता ले ले और पञ्च महाव्रतादि का पालन करे, वह कोई मुनिदशा नहीं है। *( वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ १८५ )*

71

## हम साधु कहाँ हैं ? – हम तो उनके दासानुदास हैं

लोग कहते हैं – कानजीस्वामी श्वेताम्बर मान्यतावाले हैं अर्थात् कि स्वयं कपड़े पहनते हैं और साधु नहीं होने पर भी अपने को साधु-गुरु मानते हैं। स्वयं वस्त्र पहनते हैं और वस्त्ररहित को गुरु नहीं मानते।

समाधान – परन्तु हम साधु अर्थात् निर्ग्रन्थ-गुरु कहाँ है भाई! हमारी तो गृहस्थदशा है। निर्ग्रन्थ गुरु की, मुनिवर की तो अद्भुत अलौकिक अन्तरदशा होती है। बाहर में वस्त्र से नग्न और अन्तर में राग से नग्न जिनकी परिणति हुई है – ऐसी अद्भुत दशा मुनिराज की होती है, पर भला-बुरा करने की बुद्धि जिनकी नष्ट हुई है और जिनको ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव की परिणति प्रचुर आनन्दरस से उभरी है – ऐसे उपशमरस में तरबोर मुनिराज होते हैं। अहा! जिन्होंने मोहग्रन्थि का नाश किया है, ऐसे निर्ग्रन्थ गुरु-साधु जन्म प्रमाण/नग्नरूप के धरनेवाले होते हैं। अहो! धन्य वह मुनिदशा!! *( – प्रवचनरत्नाकर, भाग ८, पृष्ठ १८३ )*

72

## वीतरागी दिगम्बर सन्तों का महा उपकार

सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी झेलकर श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने उसका रहस्य इन परमागमों में उतारा है। 'जिनदेव ऐसा कहते हैं' – ऐसा कहकर भगवान की साक्षीपूर्वक उन्होंने आत्मस्वभाव को प्रसिद्ध किया है और उनके एक हजार वर्ष पश्चात् श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव हुए, उन्होंने भी 'जिनके भवसमुद्र का किनारा निकट है, ऐसे कुन्दकुन्दाचार्यदेव हैं' – ऐसा कहकर उनके हृदय का रहस्य टीका में स्पष्ट किया है। **अहा! इन वीतरागी दिगम्बर सन्तों का मुमुक्षु जीवों पर महा उपकार है।**

*( – आत्मवैभव ( गुजराती ), पृष्ठ ३६९ )*

73

## किसी को रुचे न रुचे, मार्ग तो ऐसा है

अहा! तत्वज्ञानपूर्वक अर्थात् शुद्ध अन्तःतत्व प्रभु आत्मा के ज्ञान-श्रद्धानसहित जिसने उद्देशिक आदि आहार को छोड़ा है, उसने उसके निमित्त से होनेवाले विकार के भाव को छोड़ा है अर्थात् उसे वैसा विकार उत्पन्न ही नहीं होता।

कोई कहता है - अभी तो उद्देशिक आहार ही है; केवल पानी का भी निर्दोष आहार नहीं मिल सकता - ऐसी स्थिति है, तो क्या करना?

भाई! दिगम्बर भावलिङ्गी सन्त-मुनिवर को उद्देशिक आदि दोषवाले आहार का भाव नहीं होता, उन्हें इन भावों का प्रत्याख्यान-त्याग है, तथापि कोई विवश होकर उद्देशिक आदि आहार को ग्रहण करता है तो उसे अन्तरङ्ग में मुनिपना नहीं होता। किसी को रुचे न रुचे, परन्तु मार्ग तो ऐसा है। जिसे मार्ग का श्रद्धान नहीं, उसे मोक्षमार्ग कैसे हो सकता है? वह तो मिथ्यामार्ग में ही है। समझ में आया...?

*( - प्रवचनरत्नाकर, भाग ८, पृष्ठ २५५ )*

74

## वीतराग के उत्तराधिकारी सन्त

दिगम्बर सन्तों की बात पूर्वापर अविरोधी होती है, उसमें किसी को कहीं विरोध नहीं आता। सन्त तो वीतराग के उत्तराधिकारी हैं। सन्त कहते हैं कि भगवान ऐसा कहते हैं कि स्वाश्रय से ही लाभ है, पराश्रय से लाभ बिल्कुल नहीं है। शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं, मुनि भी यही कहते हैं, मार्ग भी ऐसा ही है और वस्तु की स्थिति भी ऐसी ही है। इसमें कहीं परस्पर विरोध नहीं है। जितनी स्वसन्मुखता होती है, उतना मोक्षमार्ग है और जितनी परसन्मुखता है, वह बन्धमार्ग है।

*( - इष्टोपदेश प्रवचन, पृष्ठ २१८ )*

75

## ऐसी मुनिदशा को कौन नहीं मानेगा ?

**प्रश्न - आप मुनि को तो मानते नहीं हो न ?**

**उत्तर** - अरे भाई ! हम तो दिगम्बर सन्तों-महामुनिवरों के दासानुदास हैं। तीन कषाय के अभाववाली, अन्तरङ्ग में अतीन्द्रिय शान्ति-आनन्द प्रगटा हो - ऐसी मुनिदशा तो साक्षात् मोक्षमार्ग है। अहा ! ऐसी मुनिदशा को कौन न माने भाई ? अहा ! दिगम्बर सन्त-मुनिवरों की अन्तर्बाह्य दशा कोई अद्भुत अलौकिक होती है, परन्तु बाह्य द्रव्यलिङ्गमात्र मुनिपना नहीं है। आगमानुसार बाह्य व्रतादि का सच्चा व्यवहार हो, वह द्रव्यलिङ्ग है, परन्तु आगम-प्रमाण सच्चा व्यवहार न हो, वहाँ क्या करें ? चौका लगाकर अपने लिये बनाया हुआ आहार ले, इसमें तो आगम-प्रमाण सच्चे व्यवहार का अर्थात् द्रव्यलिङ्ग का भी ठिकाना नहीं है। भाई ! किसी का अनादर करने की या किसी को दुःख देने की यह बात नहीं, पर तेरी चीज कैसी है, मोक्षमार्ग का स्वरूप कैसा है, वह अपने लिये समझने की बात है।

*( - प्रवचनरत्नाकर, भाग ११, पृष्ठ ७८ )*

76

## देखो, पञ्चम काल के आचार्य की दृढ़ता और पुरुषार्थ

अहो! आचार्य भगवान भावलिङ्गी मुनि थे, स्वरूप की अन्तर रमणता में स्थिर थे, छठवें-सातवें गुणस्थान की भूमिका में झूलते थे। वे अपने स्वसंवेदन और अनुभवसहित कहते हैं कि हममें अपनी आत्मा का मोक्ष का मार्ग निश्चित किया है। उनको अन्तर में बहुत वीतरागदशा बढ़ गयी थी, आनन्दकन्द स्वभाव में रमणता करते थे और बाह्य में नग्न दिगम्बरदशा बर्तती थी। मोर पिच्छि और कमण्डल - इन दो संयम के साधनों के अतिरिक्त उनके पास कुछ नहीं हो सकता। आचार्य भगवान को अवधिज्ञान अथवा मनःपर्ययज्ञान नहीं था तो भी मोक्षमार्ग का निर्णय हो चुका था। हम सिद्ध होनेवाले हैं - वे ऐसी प्रसिद्धि करते हैं। देखो, कितनी दृढ़ता और पुरुषार्थ है! इसमें अपनी आत्मा की साक्षी है, भगवान को पूछने नहीं जाना पड़ता।

*( - सद्गुरु प्रवचन प्रसाद, प्रवचनसार गाथा १९९, दिनाङ्क ११ अप्रैल १९५१ )*

77

## इस दशा के बिना मुक्ति असम्भव

अन्तर में स्वरूप लीनता के आनन्द में रागादि का अभाव तथा बाह्य में वस्त्र के एक धागेमात्र का भी अभाव – ऐसी वीतरागी मुनिदशा होती है। यदि वस्त्र का एक धागा भी ग्रहण करने का लक्ष्य हो तो वह मुनिदशा में बाधक है।

चारित्रदशा में ऐसा उदासीनभाव प्रगट होता है कि मात्र देह के अतिरिक्त किसी परिग्रह पर लक्ष्य नहीं जाता और देह भी संयम के हेतु से और मूर्च्छारहितरूप से ही होती होने से वह परिग्रह नहीं है। जिनका जन्मोत्सव इन्द्रों द्वारा मनाया गया है, उन भगवान को भी अन्तरङ्ग में ऐसी चारित्रदशा प्रगट हुए बिना केवल-ज्ञान नहीं होता – ऐसा स्वभाव है। अन्तर में जैसा रागरहित स्वभाव है, वैसी आत्मा की राग-द्वेषरहित दशा हो और बाह्य में माता ने जैसा जन्म दिया, वैसी शरीर की दशा स्वयं हो गयी हो – ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध मुनिदशा में होता है। अन्तर में वीतरागभाव प्रगट हुआ होने पर भी, बाह्य में बुद्धिपूर्वक वस्त्रादिक का सम्बन्ध रहे – ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। भगवान ऐसी पवित्रदशा की भावना भाते थे और आज (दीक्षाकल्याणक में) ऐसी दशा अङ्गीकार की है।

*( – पञ्च कल्याणक प्रवचन, गुजराती, पृष्ठ १४० )*

78

## मुक्तिसुन्दरी के नाथ : वीतरागी मुनिराज

**भगवान से साक्षात् भेंट करने के लिए निकले मोक्षमार्गी मुनिवर, आनन्दसागर में झूल रहे हैं; अन्तर के चैतन्यसागर में शान्ति का ज्वार आया है... आनन्द-सागर उछला है... रोम-रोम में समाधि परिणमित हो गयी है। ऐसे मुनि मानो 'चलते-फिरते सिद्ध' हों - ऐसी उनकी अद्भुत दशा है। मुक्तिसुन्दरी कहती है कि 'मैं ऐसे शुद्ध रत्नत्रय के साधक मुनिवरों का ही वरण करती हूँ।' ऐसे मोक्षमार्गी मुनिवर ही मुक्तिसुन्दरी के नाथ होते हैं। 'जय हो उन मुक्ति-सुन्दरी के नाथ की!'....**

79

## अहा! मुनिराज तो साक्षात् धर्म हैं

मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी.. अहाहा...! ऐसा सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज है और मुनिपने की तो क्या बात! तीन कषाय के अभावसहित जिसे अन्तर में प्रचुर आनन्द के स्वाद का अनुभव है और बाहर में जिसे वस्त्र का एक धागा भी नहीं, जङ्गल में जिसका वास होता है। अहा! उन दिगम्बर सन्तों की क्या बात करना? छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले इन मोक्षमार्गी मुनिवरों की दशा महा अलौकिक होती है। बापू! मुनि तो साक्षात् धर्म मोक्षमार्ग का स्वरूप है।

*( - प्रवचनरत्नाकर, भाग ९, पृष्ठ १०६ )*

८०

## मुनिराज : विरोधी के प्रति भी समभाव

अन्तर के चैतन्यसागर में मुनिवरों को शान्ति का ज्वार आया है; आनन्द का समुद्र उछला है; वे आनन्दसागर में झूल रहे हैं; उनके रोम-रोम में समाधि परिणमित हो गयी है - ऐसी मुनिदशा में सहजरूप से ही समिति होती है। चिदानन्दस्वरूप में लीनता से मुनिवरों को ऐसी समाधि हो गयी है कि समस्त जीवों के प्रति अनुकम्पा वर्तती है; आत्मा के शान्तरस का वेदन होने से शत्रु के प्रति भी द्वेष की वृत्ति नहीं उठती। वे निःशङ्करूप से मोक्षमार्ग की स्थापना करते हैं; विपरीतता का खण्डन करते हैं, तथापि द्वेष का भाव नहीं होता, विरोधी के प्रति भी द्वेष नहीं है। अन्तर में चैतन्य के आश्रय से अपना आनन्द प्रवर्तमान है; शान्ति के मुख्यमार्ग पर स्वयं विचरते हैं।

81

## मुनिराज के आहार की विशेष विधि

मुनियों के आहार की विशेष विधि है। मुनि, जहाँ-तहाँ आहार नहीं करते। वे जैनधर्म की श्रद्धावाले श्रावक के यहाँ ही नवधाभक्ति आदि विधिपूर्वक आहार करते हैं। श्रावक के यहाँ भी भक्ति से पड़गाहन के बिना, मुनि आहार के लिए नहीं पधारते। श्रावक भी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक नौ प्रकार की भक्ति से निर्दोष आहार मुनि के हाथ में देते हैं। **जिस दिन मुनि के आहारदान का प्रसङ्ग अपने आँगन में हो, उस दिन उस श्रावक के आनन्द का पार नहीं होता।**

श्रीराम और सीता जङ्गल में मुनि को भक्ति से आहारदान दे रहे थे, इसी समय एक गिद्धपक्षी जटायु भी उसे देखकर उसकी अनुमोदना करता है और उसे जातिस्मरण ज्ञान होता है। श्रेयांसकुमार ने जब ऋषभमुनि को प्रथम आहारदान दिया था, तब भरत चक्रवर्ती उसे धन्यवाद देने उसके घर गये थे।

*( - श्रावकधर्म प्रकाश, पृष्ठ ६८ से ७३ एवं ९२ व ९४ से सङ्कलित )*

82

## अहो! छोटे से सिद्ध भगवान

जैनदर्शन के सन्त-मुनिवर कैसे होते हैं ? मोक्ष की साधना करनेवाले मुनिवर, वन-जङ्गल में विचरनेवाले और आत्मा के शान्तरस में लीन होते हैं। इन्द्रियों की ओर से वृत्ति छूटकर आत्मा के अतीन्द्रिय-आनन्द में उनकी वृत्ति झुक गयी है। माता के उदर से उत्पन्न बालक जैसी उनकी निर्दोष आकृति है। ऐसे मुनि आहार लेने के लिए वन में से ग्राम में पधार रहे हों; उस समय ऐसा लगता है, मानो सिद्ध भगवान ग्राम में प्रवेश कर रहे हैं!

*[ - आत्मधर्म ( हिन्दी ) क्रमाङ्क १३० से साभार ]*

83

## उत्तम आकिञ्चन्य के धनी

मुनियों को शास्त्र का अगाध ज्ञान हो तो भी उसका उनको ममत्व अथवा अभिमान नहीं होता। दूसरे मुनियों को ज्ञान का उपदेश देने में वे किञ्चित् भी संकोच नहीं करते। 'मैं अपना सारा रहस्य इससे कह दूँगा तो यह मुझसे आगे बढ़ जाएगा' – ऐसे ईर्ष्याभाव का विकल्प भी मुनि को नहीं होता। अन्य कोई अपने से आगे बढ़कर, अपने से पूर्व केवलज्ञान प्राप्त करता हो तो उसमें मुनि की अनुमोदना होती है। **इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि गृहस्थों में भी ज्ञान-चारित्रादि गुणों में जो अपने से बढ़ा हुआ हो, उसके प्रति अनुमोदना और बहुमान होता है। विकल्प के समय यदि अधिक गुणवान के प्रति अनुमोदना न हो तो उस जीव को गुण की रुचि नहीं है।**

मुनिजन, अन्तरङ्ग में किञ्चित् भी छिपाये बिना, सरलता से पात्र जीव को सर्व रहस्य का उपदेश करते हैं। वे उपदेश के विकल्प को भी अपना नहीं मानते। जिनको शरीर और विकल्प का ममत्व नहीं है तथा आहार और उपदेशादि के विकल्प को तोड़कर वीतराग-स्वभाव में स्थित हैं — ऐसे **उत्तम आकिञ्चन्य-धर्म** में रत मुनिगण, इस संसार में धन्य हैं।

*( - दशलक्षण धर्म पुस्तक से साभार गृहीत सार-संक्षेप )*

84

## मुनिराज निर्ग्रन्थ क्यों ?

साधु, निर्ग्रन्थ हैं – **बाह्य अभ्यन्तर समस्त परिग्रह के ग्रहण से रहित होने के कारण निर्ग्रन्थ** – मुनिराज को बाह्य में वस्त्र का एक टुकड़ा... अरे! एक धागा भी... नहीं होता। अष्टपाहुड़ (सूत्रपाहुड़ गाथा १८ व बोधपाहुड़ गाथा ५५ में) कहा है न! **तिलतुसमितं** अर्थात् किसी को तिल के तुषमात्र भी परिग्रह हो, तो वह मुनि नहीं है; और यदि वह अपने को मुनि मानता है तो निगोद में जाता है – ऐसी वस्तु की स्थिति है। अहा! मुनिदशा में वस्त्र-पात्र के ग्रहण का विकल्प ही नहीं होता।

**मुनि किसे कहते हैं ? धन्य दशा! धन्य अवतार!! कि जिसने केवलज्ञान को हथेली में लेने की तैयारी की है - ऐसे मुनि को बाह्य में वस्त्र नहीं होता और अन्तरङ्ग में राग का कण भी नहीं होता। - इस कारण मुनि निर्ग्रन्थ हैं - ऐसा कहते हैं।**

*( - आत्मधर्म वर्ष २८, अंक ४ एवं*
*प्रवचनरत्नचिन्तामणि, भाग-३, से साभार )*

85

## हम भक्ति से वन्दन करते हैं

अहा! वे सन्त तो चैतन्य के निर्विकल्प शान्तरस का वेदन करनेवाले हैं, वहाँ उन्हें बाह्य विकल्पों की काँक्षा क्यों हो? वे परम निष्काँक्ष हैं। अन्तर में परमसुखरस के पान से जो स्वयं तृप्त हुए हैं, वे अब दु:खजनक विषयों की इच्छा क्यों करेंगे? — ऐसे परम नि:काँक्ष भाववाले जैन साधु होते हैं। सन्तों के ऐसे अतीन्द्रिय आनन्दमय चैतन्य-परिणमन को पहिचानकर, हम भक्ति से उनकी वन्दना करते हैं।

*( - आत्मधर्म वर्ष २८, अंक ४ एवं*
*प्रवचनरत्नचिन्तामणि, भाग-३, से साभार )*

86

## देव-शास्त्र-गुरु का दासानुदास सम्यग्दृष्टि

अहो! यथार्थ श्रद्धावन्त जीव तो देव-शास्त्र-गुरु का दासानुदास होता है। उसे, मैं चतुर्विध संघ का सेवक हूँ - ऐसा विकल्प आता है; तथापि 'मैं विकल्प से पार हूँ' - ऐसी श्रद्धा नहीं छूटती। जिसको सर्वज्ञ द्वारा कथित छह द्रव्य और सात तत्त्वों की श्रद्धा होती है, उसे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति उत्साह आये बिना नहीं रहता। *( अष्टपाहुड़ प्रवचन, पृष्ठ ११३ )*

87

## कौन मुनिराज को नहीं मानेगा ?

**प्रश्न** – आप मुनि को मानते हैं ?

**उत्तर** – भाई ! आत्मज्ञानयुक्त सच्चे भावमुनिपने को कौन नहीं मानेगा ? वे तो पञ्च परमेष्ठी में साधु परमेष्ठी हैं, उनके तो हम दासानुदास हैं। कुछ लोग कहते हैं कि आप मुनि को नहीं मानते; परन्तु भाई ! तुम्हें मनवाने का क्या काम है ? अन्तर में सच्चा मुनिपना हो और दूसरे उसे न मानें तो क्या मुनिपना नष्ट हो जाता है ? और यदि अन्तर में सच्चा मुनिपना न हो और दूसरे मुनिपना मानें तो क्या सच्चा मुनिपना आ जाता है ? मुनिपना मनवाने आदि के विकल्प तो कहीं दूर रह गये, परन्तु मुनि को तो व्रतादि के शुभविकल्प आयें, वह भी कर्तव्य नहीं है, सहज है।

*( – वचनामृत प्रवचन, २/३५८ )*

88

## जिसे मुनिराज के प्रति बहुमान नहीं, वह मिथ्यादृष्टि

जैसे पिता को देखते ही पुत्र को हर्ष होता है; उसी प्रकार अपने धर्मपिता को देखते ही धर्मात्मा के मन में हर्ष होता है। जिसको स्वप्न में भी ऐसे दिगम्बर सन्त के दर्शन के प्रति अरुचि का भाव आता है, वह जीव पापी है। अरे! देवता भी जिनके चरणों में नमते हैं, कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसे महान सन्त भी जिनके लिये धन्य-धन्य कहते हैं - ऐसे दिगम्बर सन्त-मुनियों के प्रति जिस जीव को प्रमोद-भक्ति-बहुमान नहीं आता, वह जीव मिथ्यादृष्टि है। *( अष्टपाहुड़ प्रवचन, १८५ )*

89

## मुनि को वन्दन नहीं करनेवाला दर्शनभ्रष्ट

अहो! धन्य चारित्रदशा। अहो! वैसी दशा प्राप्त होना कठिन है। अहो! ऐसे मुनि को सम्यग्दृष्टि वन्दन नहीं करे - ऐसा नहीं होता। जो दर्शनभ्रष्ट पुरुष ऐसे मुनि को वन्दन नहीं करता, वह एकेन्द्रिय में जाएगा।

*( अष्टपाहुड़ प्रवचन, पृष्ठ १२९ )*

90

## मुनि का रूप : जैनदर्शन की मुद्रा

जिसको ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा की दृष्टि हुई है और तदुपरान्त असङ्गस्वभाव में लीन होकर मुनिदशा प्रगटी है और बाहर में भी असङ्गदशा हो गई है – ऐसे मुनि का रूप जैनदर्शन की मुद्रा है। ऐसी अन्तर-बाह्य मुद्राधारक सन्त को देखकर जिसको प्रमोद नहीं आता और मत्सरभाव से उनकी निन्दा करता है, वह जीव मिथ्यादृष्टि है। उसको धर्म की प्रीति नहीं है।

*( अष्टपाहुड़ प्रवचन, पृष्ठ १८२ )*

91

## कौन मुनिराज की नहीं मानेगा ?

**प्रश्न** – लोग कहते हैं कि आप मुनि को नहीं मानते हैं ?

**उत्तर** – मुनि को कौन नहीं मानेगा भाई! मुनिपना तो परमेश्वर पद है बापू! परन्तु यथार्थ मुनिपना होना चाहिए न ? कहा न कि मुनिराज, चारित्र के बल से, कर्मचेतना और कर्मफलचेतना से भिन्न जो अपने चैतन्य के परिणमनस्वरूप ज्ञानचेतना है, उसका अनुभवन करते हैं। अहाहा...! ऐसी अलौकिक मुनिदशा होती है!

*( - प्रवचनरत्नाकर, भाग १०, पृष्ठ ६३ )*

92

## अन्य किसी परीक्षा की आवश्यकता नहीं

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भावलिङ्ग और बाह्य में दिगम्बर दशारूप द्रव्यलिङ्ग के धारक - ऐसे सन्तों को देखकर जो जीव उनका विनय, सत्कार, बहुमान आदि नहीं करता और द्वेषभाव का सेवन करता है, वह जीव धर्म का द्वेषी प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि है। दिगम्बर मुनिराज को देखकर अन्यमत के आग्रहवाले जीव निन्दा करते हैं, उन्हें प्रत्यक्षरूप से मिथ्यादृष्टि ही जानना - ऐसा यहाँ आचार्यदेव ने स्पष्ट किया है। **जिसको भावलिङ्गी दिगम्बर सन्त के प्रति बहुमान नहीं आता और उनके प्रति अभिमानपूर्वक द्वेष से वर्तता है, उसे तो मिथ्यादृष्टि ही जानना; इसमें अन्य कोई परीक्षा की आवश्यकता नहीं है।**

*( अष्टपाहुड़ प्रवचन, पृष्ठ १८३ )*

93

## मुनिराज मानो वीतराग जिनबिम्ब

जिस प्रकार ब्राह्मण, लड्डू खाकर मन्थर अर्थात् सुस्त होने से मदमस्त चाल से चलता है, इसी प्रकार मुनिराज को अन्दर साधना का आनन्द इतना अधिक बढ़ गया है कि जिससे वे स्वरूप-मन्थर हो गये हैं, स्वरूप में जम गये हैं, अन्तर में तृप्त-तृप्त हैं। मुनिराज तो मानों वीतरागता की मूर्ति हों, जिनबिम्ब हों - इस प्रकार परिणमित हो गये हैं। जैसे, आत्मा स्वभाव से जिनस्वरूप है; उसी प्रकार पर्याय में भी मुनिराज मानो वीतराग जिनबिम्ब हों - ऐसे परिणमित हो गये हैं।

*( - वचनामृत प्रवचन, गुजराती, ४/ १० )*

94

## अहो! जिन्हें उपसर्ग भी मित्र लगता है

वनवासी मुनिवरों को बाहर में अनेक प्रकार के उपसर्ग आते हैं। चींटियाँ काट खाती हैं, सर्प डस लेते हैं, दुष्ट मनुष्य प्रहार करते हैं, पूर्व के विरोधी जीव पार्श्वनाथ और कमठ के प्रसङ्ग की तरह देव होकर प्रतिकूलताओं की वर्षा करते हैं; पानी, पत्थर और अग्नि इत्यादि की वर्षा करते हैं, तब उन्हें अन्तर में ऐसा लगता है कि अहो! यह तो मेरी स्वरूप स्थिरता की परीक्षा का काल है। मेरी सहज दशा की कसौटी करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ; इसलिए यह उपसर्ग तो मेरा मित्र है।

अहा! जिनका लक्ष्य निज द्रव्यसामान्य पर है, दृष्टि और संयम के आश्रयभूत त्रिकाल शुद्ध ज्ञायकभाव के उग्र अवलम्बन से स्वरूप रमणता की शीतल छाया जिन्हें प्रगट हुई है, उन मुनिवरों को बाहर का कोई भी उपसर्ग, स्वरूप स्थिरता से चलित नहीं कर सकता। उपसर्ग की प्रतिकूलता के समय भी उन्हें स्वाभाविक आनन्दधारा सतत् बहती है। अहा! मुनिराज कहते हैं कि उपसर्ग तो मेरी स्वरूप स्थिरता की कसौटी का काल है।

*( वचनामृत प्रवचन, भाग 4, पृष्ठ 196 )*

95

## जिन-समान दशा : मुनिदशा

मुनिराज भले ही अभी पूर्ण जिन नहीं हैं, केवलज्ञानी नहीं हैं; तथापि उन्हें जिन-समान कहा गया है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती समकिती को भी 'जिन' तो कहा जाता है परन्तु मुनिराज को तो अन्दर स्वरूप-रमणता बहुत बढ़ गयी होने से 'जिनवर' कहा जाता है और तीर्थङ्कर केवली भगवन्तों को 'जिनवर वृषभ' कहा जाता है। समकिती, जिनेन्द्र भगवान का लघुनन्दन है और मुनिराज जिनेन्द्र परमात्मा के बड़े पुत्र हैं; इसलिए मुनिराज जिन नहीं परन्तु जिन-समान कहे गये हैं।

*( - वचनामृत प्रवचन, गुजराती, ४/ ११ )*

96

## अहा! मुनिराज किसे कहते हैं ?

**अहा! मुनिराज किसे कहते हैं ?** - जिन्हें अन्तरङ्ग में शरीरादि परद्रव्य और रागादि विभावों से भिन्न चिन्मात्र निज-शुद्धात्मद्रव्य की सहज प्रतीति, ज्ञान और स्थिरता के साथ-साथ विकल्प के काल में पञ्चाचार, व्रत-नियम, पञ्च-परमेष्ठी की भक्ति इत्यादि शुभभाव हठरहित वर्तते हों, उन्हें मुनिराज कहते हैं।

मुनिराज को तो भूमिका के योग्य पञ्चाचार, व्रत, तप, जिनेन्द्रभक्ति इत्यादि के शुभभाव आवें, उस समय भी भेदज्ञान अर्थात् देहादि और रागादि से भिन्न आत्मज्ञान की धारा तथा स्वरूप-रमणता की शुद्धचारित्रधारा सतत चालू ही होती है। मुनिराज तो स्वानुभूतियुक्त आत्मज्ञान तथा शुद्धचारित्रवन्त वीतरागी सच्चे सन्त होते हैं। वे बाहर में नग्न-दिगम्बर और अन्तर में उन्हें मुनि के योग्य आत्मशुद्धिसहित पञ्च महाव्रत इत्यादि विकल्प होते हैं। विकल्प के समय भी राग से भिन्न मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, यह भेदज्ञान की धारा तथा स्वरूप-स्थिरता की निर्मलदशा निरन्तर चालू ही है।

अरे ! ऐसी दशा अर्थात् सतत प्रवाहित भेदज्ञान की धारा और स्वरूप की शुद्धचारित्रदशा अभी इस काल में और इस क्षेत्र में कहाँ देखने में आती है ?

*( - वचनामृत प्रवचन, गुजराती, ४/५४ )*

97

## अहा! ऐसी दशा हमें कब प्रगट हो ?

स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिए मुनिराज जङ्गल में बसते हैं। जिन्होंने शुभाशुभ विभाव और पर्याय की रुचि छोड़कर अभेद ज्ञायक की रुचि प्रगट की है, उन्हें ज्ञायक में विद्यमान सर्वशक्तियों का निर्मल अंश एक साथ व्यक्त हो गया है। उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य इत्यादि अंशों के साथ अतीन्द्रिय आनन्द का अंश भी व्यक्त हुआ है। सम्यग्दर्शन होने पर आनन्द सागर ध्रुव चैतन्य के आश्रय से जो आनन्द अंश प्रगट हुआ है, उसमें अतिशय वृद्धि करने के लिए मुनिराज, घोर जङ्गल में बस अकेले आनन्दमूर्ति ज्ञायक में ही बस रहे हैं। स्वभाव में से विशेष-विशेष स्वरूपानन्द प्रगट करने के लिए मुनिराज, जहाँ सिंह गरजते हैं, नाग फुफकारते हैं - ऐसे एकान्त निर्जन जङ्गल में जा बसे हैं। अहा! ऐसी दशा हमें कब प्रगट हो, सम्यग्दृष्टि को यह भावना होती है।

*( - वचनामृत प्रवचन, गुजराती, ४/११४ )*

९८

## अहा! कौन इस दशा को धारण नहीं करेगा

अहा चारित्र! धन्य वह दशा! गणधर जिसे ग्रहण करते हैं, इन्द्र और चक्रवर्ती जिसके चरणों में मस्तक झुकाते हैं – वह दशा कैसी होगी! जिसे दुःख से मुक्त होना हो, उसे ऐसी दशा प्रगट करना ही होगा। पद्मनन्दिस्वामी कहते हैं कि – हे नाथ! आपने केवलज्ञाननिधि प्रगट करके बतला दी, चैतन्य के अपार निधान आपने प्रगट दिखला दिये तो अब कौन ऐसा है कि इस चैतन्यनिधान की तुलना में इन्द्रासन को भी तृण समान समझकर दीक्षित नहीं होगा? मुनिवर तो आत्मरस में निमग्न होकर निर्विकल्प आनन्द का पेय पीते हैं। जिस प्रकार पूर्णिमा का चन्द्र, समुद्र को उछालता है, उसी प्रकार चैतन्य के ध्यान द्वारा मुनिवर अन्तरङ्ग आनन्द सागर को उछालते हैं। अहा! उस आनन्दानुभव के निकट इन्द्र का वैभव तो क्या, तीन लोक का वैभव भी अत्यन्त तुच्छ है।

*( आत्मधर्म, वर्ष सोलहवाँ, वीर निर्वाण सम्वत् २४८६ )*

99

## यही मुनिमार्ग, शेष सब उन्मार्ग

मुनिराज तो उन्हें कहते हैं कि जिन्हें अन्तर में स्वभाव के आश्रय से प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप आनन्द की धारा बहती हो। आत्मा के जघन्य अवलम्बन में जो दृष्टि और ज्ञान हुए, उसमें भी साथ ही अतीन्द्रियआनन्द के अंश का वेदन है परन्तु मुनिदशा में तो शुद्धात्मावलम्बन उग्र कोटि का होने से आनन्द की धारा विशेष होती है। ध्रुव ज्ञायक-स्वभाव का उग्र अवलम्बन करने से आत्मा में से संयम प्रगट हुआ है। महाव्रतादि के विकल्प अथवा नग्नपने के कारण वह प्रगट नहीं हुआ है। अहा, भाई! सूक्ष्म बात है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो यह कहते हैं कि बाहर में वस्त्ररहित नग्नदशारूप द्रव्यलिङ्गी और अन्तरङ्ग में मिथ्यात्व व अविरति के विकल्प से रहित संयम/चारित्र प्रगट हो, वह एक ही मुनिमार्ग है, शेष सब उन्मार्ग है। अहा! यह तो नग्न सत्य है, परम सत्य परमात्मा जिनेश्वर की यह पुकार है।

*( वचनामृत-प्रवचन, भाग-४, पृष्ठ ११३ )*

100

## मुनिराज स्नान क्यों नहीं करते ?

मुनि को स्नान क्यों नहीं ? उसका कारण यह है कि वह शृङ्गार में आ जाता है; इसलिए इन्द्रियविजेता मुनिराज के वह नहीं होता। तत्त्वज्ञानपूर्वक अदन्त धावन, नग्नता आदि दशा तो उसी के होती है, जिसकी शरीर के प्रति आसक्ति छूट गयी हो। जिसके तीन कषायरहित अन्तर्लीनतारूप आनन्ददशा प्रगट हो, उसकी बाह्यदशा भी तद्नुसार ही होती है। 'नग्नभाव मुण्डभाव सह अस्नानता' – यह सब होते ही हैं। अन्तर में निर्मलानन्द चिद्रूप स्वभाव का निरन्तर अनुभव/वेदन करते हैं, उन्हें बाह्य जल से स्नान करके शरीर को उज्ज्वल करने का भाव नहीं आता। उनकी तो ऐसी भावना होती है कि अन्तर में एकाग्रता द्वारा आनन्द की लहर में ऐसे झूलें कि शक्तिरूप से जो आनन्द भरा है, उसका स्वाद लेते हुए तृप्त-तृप्त हो जाएँ। अतीन्द्रिय आनन्द में नित्य केलि करना जिसका सहज स्वभाव है-ऐसा अपूर्व अवसर कब आएगा... उसकी ज्ञानी भावना भाते हैं।

वीतराग होने की रुचिवाला जीव, चारित्र प्रगट होने से पूर्व वीतरागचारित्र की भावना भाता है।

*( आत्मधर्म, अङ्क-9, वर्ष 1961, पृष्ठ-350 )*

101

## वह तो हमारा परम मित्र है

आत्मानन्द में झूलते हुए सन्तों को शरीर की परवाह नहीं होती। उन्हें तप में खेद होता ही नहीं। भगवान होने के लिए भगवान कथित चारित्र की रमणता में मस्त-लीन-आरूढ़ होने से खेद (कष्ट) नहीं रहता। तप में (मुनिदशा में) खेद होता ही नहीं, वहाँ तो आनन्द ही होता है। जहाँ दूसरे लोग भय और खेद समझते हैं, वहाँ सन्तों को अतीन्द्रिय आनन्द की अधिकता ही है। वन-पर्वत में सिंह-बाघ का संयोग भले हो किन्तु जहाँ शाश्वत चैतन्यस्वरूप की अभिन्नता का स्वाद लेने में लीन हुए, वहाँ शरीर का अडोल आसन होता है - मुख्यतः शरीर की ऐसी ही दशा होती है।

शरीर, जीव से भिन्न है। इस समय भी प्रत्यक्ष भिन्न ही है। हमें शरीर की आवश्यकता नहीं है। सिंह को उसकी आवश्यकता है, इसलिए ले जाए तो वह हमारा मित्र है। सिंह आकर शरीर को पकड़े, उस समय हम अडोल आत्मस्थिरता ग्रहण करें - ऐसी अडोल आत्मस्थिरता की भावना ज्ञानी भाते हैं। मैं अविनाशी अनन्त गुणसम्पन्न आत्मा हूँ, मैं तीन काल में भी शरीर नहीं हूँ - ऐसे भानपूर्वक चारित्र में आरूढ़

मुनिपद का चारित्र अलौकिक है। जगत् की परवाह छोड़कर, जगत् से उदास होकर, वन में एकाकी वास करने में मुनि को खेद नहीं होता। लोगों ने अभी निश्चयसम्यग्दर्शन क्या है? उसका स्वरूप नहीं सुना और सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र कभी नहीं होता।

*( आत्मधर्म, अङ्क-9, वर्ष 1961, पृष्ठ-352 )*

102

## हम तो उनके दासानुदास हैं

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का हम पर बहुत उपकार है। हम उनके दासानुदास हैं... श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्र में सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण में गये थे और वहाँ वे आठ दिन रहे थे - इस विषय में अणुमात्र भी शङ्का नहीं है, यह बात ऐसी ही है। कल्पना करना नहीं, ना करना नहीं, मानो तो भी ऐसा ही है और न मानो तो भी ऐसा ही है। यथातथ्य बात है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाण सिद्ध है।

*( - वचनामृत प्रवचन, गुजराती, ४/८१ )*

103

## वह तो मुनिदशा का विराधक है

सम्यग्दर्शन के बिना बाह्यलिङ्ग और व्रतादि को निष्फल कहा है। सम्यग्दर्शनपूर्वक का जो जिनलिङ्ग अर्थात् मुनिदशा है, वह महापूज्य है; वह मोक्षसाधन है परन्तु जो अपने को मुनि मनवाते हैं और मुनि के मूलगुण-दिगम्बरदशा इत्यादि का पालन नहीं करते - ऐसे जीव, जिनलिङ्ग की विराधना करके मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं। वे मुनि नहीं किन्तु मुनिदशा के विराधक हैं। आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! मुनिदशा का पालन न हो सके तो उसकी भावना रखकर, उसका स्वरूप जैसा है, वैसा भलीभाँति समझना चाहिए। उस सच्ची श्रद्धा द्वारा भी तेरा सम्यक्त्व और मोक्षमार्ग टिका रहेगा परन्तु जैनमार्ग की मुनिदशा का स्वरूप ही विपरीत मान लेना तो श्रद्धा का महादोष है। मुनिपना न लिया जा सके और सम्यक्श्रद्धा यथावत् कायम रखे तो उसे चारित्र का अल्प दोष होने पर भी वह मोक्षमार्ग में है। मुनिपने का बड़ा नाम धराकर, प्रतिज्ञा तोड़कर, व्यवहार में भी अन्यथा वर्ते और कहे कि मुनिपना तो ऐसा ही होता है तो वह जैनदर्शन की प्रणाली को बिगाड़ता है। आगम में जो कहा है, उसे भी वह नहीं मानता, विपरीत मानता

है; इस कारण कहीं जैनदर्शन का स्वरूप दूसरा नहीं हो जाएगा, मात्र उसकी आत्मा का अहित होगा।

*[ आत्मधर्म, ( गुजराती ) वर्ष 27, अङ्क 314, पृष्ठ 17 ]*

(104)

## मुनिदशा : जगत्पूज्य परमेष्ठी पद

देखो तो सही! हजार वर्ष पहले के मुनिराज को साक्षात् निर्विकल्पदशा हुई, उसका निर्णय उनसे हजार वर्ष पश्चात् हुए मुनिराज ने कर लिया। अहो! मुनियों की दशा अलौकिक होती है। ऐसा साक्षात् वीतराग मोक्षमार्ग इस काल में भी होता है। यह सातवें गुणस्थान की बात है और इस काल में भी भरतक्षेत्र के जीव सातवें गुणस्थान की दशा प्रगट कर सकते हैं – ऐसी दशा कुन्दकुन्द आचार्यदेव को थी – यह अमृतचन्द्राचार्यदेव ने प्रसिद्ध किया है।

अहो! ऐसी मुनिदशा का पल धन्य है... ऐसी वीतरागदशा में आत्मा झूलता हो, वह तो मानो चलते-फिरते सिद्ध! मिथ्यादृष्टि को चलता -फिरता शव कहा है और मोक्षमार्गी मुनिराज चलते-फिरते सिद्ध हैं। मुनिदशा तो जगत्पूज्य परमेष्ठी पद है।

*( आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष 25, अङ्क-12, पृष्ठ - 14 )*

105

## अल्प काल में ही केवलज्ञान के पात्र

आचार्य भगवान स्वयं ही पञ्च परमेष्ठी पद में वर्त रहे हैं परन्तु अभी सरागचारित्रदशा है, इसलिए उस राग का अभाव करके सम्पूर्ण शुद्धोपयोग की भावना भायी है। अन्तर्मुहूर्त में प्रतिक्षण शुद्धोपयोग आया ही करता है। क्षण में शुद्धोपयोग प्रगट करके सातवें गुणस्थान में वीतराग अनुभव में लीन होते हैं और फिर शुभोपयोग होने पर छठवें गुणस्थान में पञ्च महाव्रत अथवा शास्त्र-रचना इत्यादि का विकल्प उत्पन्न होता है। उस शुभ का और उसके फल का निषेध करते हुए कहते हैं कि यह सराग-चारित्र अर्थात् शुभराग अनिष्ट फलवाला है। वीतरागचारित्र का फल केवलज्ञान और अतीन्द्रिय सुख है, वही इष्ट है। पञ्चम काल के मुनि हैं और सरागचारित्र है, इसलिए स्वर्ग में तो जाएँगे परन्तु उसका आदर नहीं है। वीतरागचारित्र की ही भावना है; अकेले शुद्ध स्वभाव की ही अखण्ड आराधना करके अल्प काल में चारित्र पूर्ण करके केवलज्ञान और मोक्षदशा प्रगट करेंगे।

*( आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष 25, अङ्क-12, पृष्ठ - 36 )*

106

## अनन्त वीतरागी सन्तों का पन्थ ही हमारा पन्थ

आत्मा के अपार आनन्दरस का स्वाद लेने में जो उत्साहवान हुआ है, उसे कदाचित् बारह मास तक आहार न मिले तो भी दीनता नहीं आती, क्योंकि अतीन्द्रिय परमानन्द की डकारें लेता हुआ वह बाह्य में कहीं स्वाद का अनुभव नहीं करता। कदाचित् सरस भोजन का योग मिले तब भी उसे प्रसन्नता का राग/रतिभाव उत्पन्न नहीं होता – ऐसे अपूर्व अवसर की भावना धर्मी जीव अपने आत्मा के निकट करता है। श्रीमद् कहते हैं कि –

**'रजकण के रिद्धि वैमानिक देव की,**
**सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो।'**

सचमुच आत्मानन्द के समक्ष वह सब ऋद्धि धूल ही है। भरना और खाली होना तो उसका स्वभाव है। उसका ममत्व और प्रेम छोड़कर हम तो आत्मानन्द में झूलेंगे.... जिस मार्ग पर अनन्त वीतराग सन्त चले, वही हमारा पन्थ है।

*( आत्मधर्म, अङ्क-9, वर्ष 1961, पृष्ठ-351 )*

107

## मुनि का दर्शन प्राप्त होना महान आनन्द की बात

अहो! मुनिवर तो आत्मा के परम आनन्द में झूलते-झूलते मोक्ष को साध रहे हैं। आत्मा के अनुभवपूर्वक दिगम्बर चारित्रदशा द्वारा ही मोक्ष सधता है, दिगम्बर साधु अर्थात् साक्षात् मोक्ष का मार्ग.... वे तो छोटे सिद्ध हैं.... अन्तर के चिदानन्द स्वरूप में झूलते-झूलते बारम्बार शुद्धोपयोग द्वारा निर्विकल्प आनन्द का अनुभव करते हैं। **पञ्च परमेष्ठी की पंक्ति में जिनका स्थान है, ऐसे मुनियों की महिमा की क्या बात! ऐसे मुनि का दर्शन प्राप्त होना भी महान आनन्द की बात है। ऐसे मुनिवरों के तो हम दासानुदास हैं! हम उनके चरणों में नमते हैं.... धन्य वह मुनिदशा! हम भी उसकी भावना भाते हैं।** *( - आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष २८, अङ्क ३३२, कवर पृ. २ )*

(108)

## त्रिकालवर्ती सन्तों का एक ही प्रकार

तीनों काल के अनन्त सन्तों का एक ही प्रकार है कि उन्हें पहले आत्मभानपूर्वक मुनि होने का विकल्प होता है, परन्तु वे उसे आश्रय करने योग्य नहीं मानते और उन्हें बाह्य परिग्रह का सङ्ग भी नहीं होता; फिर अन्दर चैतन्य में लीन होने पर उन्हें पहले सातवाँ गुणस्थान प्रगट होता है। **ऐसी मुनिदशा हुए बिना कभी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। गृहस्थदशा में सम्यग्दर्शन और एकावतारीपना हो सकता है, परन्तु ऐसी मुनिदशा हुए बिना गृहस्थ सम्यग्दृष्टि को भी मुक्ति नहीं होती।**

*( - महामहोत्सव प्रवचन, पृष्ठ १५ )*

# साधु चरण वन्दना

( वीर छन्द )

जिनकी निर्मल परिणति में नित सिद्धों का ध्रुवधाम है।
शाश्वत शिवपद साधक साधु चरण में नम्र प्रणाम है॥
सर्व प्रथम मिथ्यात्व सुभट पर करते वज्र प्रहार है।
अन्तर्बाह्य परिग्रह का नहिं कोई शरणागार है॥
अन्तर में शुद्धोपयोग से स्वानुभूति रसपान है।
शाश्वत शिवपद साधक साधु चरण में नम्र प्रणाम है॥1॥
पंचेन्द्रिय विस्तार रहित बस देह मात्र ही संग है।
संयोगों के सहज परिणमन के प्रति भी निःसंग है॥
बाह्य क्रिया जो योग्य वर्तती सहज वर्तता ज्ञान है।
शाश्वत शिवपद साधक साधु चरण में नम्र प्रणाम है॥2॥
उदासीन निश्चल वृत्ति संग होता शुभ उपयोग है।
सहज वर्तते सभी मूलगुण सहज चिदानन्द भोग है॥
हिंसादिक पापों का किंचित् भी नहिं नाम निशान है।
शाश्वत् शिवपद साधक साधु चरण में नम्र प्रणाम॥3॥
परम दिगम्बर समता रसमय मुद्रा जिनवत् सोहती।
भ्रमतम नाशक वचन किरण भी भविजन का मन मोहती॥
व्रत तप परिवार सहज वर्तते सहज अध्ययन ध्यान है।
शाश्वत् शिवपद साधक साधु चरण में नम्र प्रणाम॥4॥
दृष्टि ज्ञान वृत्ति का आश्रय केवल ज्ञायक भाव ही।
चलते फिरते सिद्ध गुरु की शिवपद की नहिं चाह भी।
गुरु पद-पंकज भ्रमर चित्त का चरणों में विश्राम है।
शाश्वत् शिवपद साधक साधु चरण में नम्र प्रणाम॥5॥

– पण्डित अभयकुमार जैन, जैनदर्शनाचार्य, देवलाली